ज्योतिषिका

* एक प्रेम निवेदन *

प्रिय आत्मन्,

आचार्यश्री रजनीश के प्रेमियों के सुझाव पर ऐसा निश्चय किया गया है कि आचार्यश्री द्वारा विभिन्न व्यक्तियों को लिखे गये पत्रों का एक सुन्दर-सा संकलन पुस्तक-आकार में शीघ्र ही प्रकाशित किया जाय ।

यह पुस्तक आचार्यश्री के जन्म-दिन, ११ दिसम्बर, १९७० के उपलक्ष्य में प्रकाशित की जानी है ।

पुस्तक का नाम रखा जाना है, **'प्रेम के फूल'** ।

जिन मित्रों, प्रेमियों व साधक-साधिकाओं के पास आचार्यश्री के लिखे हुए पत्र हों तथा जिन पत्रों में कुछ भी ऐसा विषय हो जो किसी व्यक्ति के जीवन-विकास में उपयोगी हो सके ऐसे पत्र मूल (ओरीजिनल) में अथवा सत्य-प्रतिलिपि में शीघ्र ही नीचे के पते पर भेजने की कृपा करें ।

[पूर्णव्यक्तिगत तथा घरेलू बातें पत्रों में से अलग निकाल दी जायेंगी. अतः आप पत्र भेजने में जरा भी संकोच न करेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है ।

आपसे पत्र मांगे जायं, यह आचार्यश्री का स्वयं का सुझाव है ।

मूल पत्र कुछ ही दिनों म लौटा दिये जाएँगे ।

पत्रों की प्रतीक्षा में,

पता : स्वामी योग चिन्मय
(आचार्य रजनीश के सचिव)
ए-१ वुडलैण्ड अपार्टमेन्ट्स्,
पैडर रोड, बम्बई-२६

आप सबका अपना ही,
योग चिन्मय के प्रणाम.

दिसम्बर १९७०

आचार्यश्री रजनीश की अमृतवाणी का
त्रैमासिक संकलन

[जन्मोत्सव अंक]

अंक : १९ वां

मान्यक सम्पादक :
महीपाल
श्री. अरविन्द

आवरण-सज्जा :
रेंगारेखा स्टुडियो

एक प्रति : रु. १-२५
वार्षिक : रु. ५-००

ज्योति शिखा

प्रकाशन स्थल :
जीवन जागृति केन्द्र
एम्पायर बिल्डिंग (वी. टी. स्टेशन के सामने), पहला मंजला, रूम नं. ५३,
डॉ. दादाभाई नौरोजी रोड, **बम्बई–१**
फोन : २६४५३०

•

मुद्रण स्थल :
स्टेट पीपल प्रेस,
फोर्ट, बम्बई–१

•

अ नु क्र म

विषय	संकलनकर्ता	पृष्ठ
• शत-शत नमन	किशोरीरमण टण्डन	५
• मैं जो हूं सो हूं	नानूभाई	७
• एतद्वै तत्	डॉ. रामचन्द्र प्रसाद	२१
• ताओ	नीलरत्न देसाई	३२
• यात्रा-संस्मरण : देवभूमि मनाली	किशोरीरमण टण्डन	४८
• सत्यं शिवं सुंदरम्	लहरचंद शाह	५६
• संन्यास : नई दिशा नया बोध	माणिक बाफना	७५
• नये आयाम संन्यास के	स्वामी योग चिन्मय	८५
• देश-व्यापी कार्यक्रम	... ...	९२
• समर्पित तुम्हीं समर्पण तुम्हें (कविता)	महीपाल	मध्यवर्ती पृष्ठ

जन्मोत्सव :
११ दिसम्बर

तुम जियो हज़ारों साल,
साल के दिन हों पचास हज़ार

11 दिसम्बर

आचार्यश्री रजनीश के
५० वें जन्मोत्सव की
मंगल-वेला पर

शत-शत नमन!

आज तक
सागर ने कितनी ऊर्मियां आलोड़ित कीं,
सूर्य ने कितनी रश्मियां बिखेरीं,
पवन ने कितनी लहरियां प्रवाहित कीं,
बादलों ने कितने जल-बिंदु बरसाए;
गणना कर सका है कौन?

आज तक
अपनी धुरी पर धरती कितनी बार घूमी,
कितनी बार दिवस उगे—रातें डूबीं;
जान सका है कौन?

आचार्यश्री,
फिर आप तो
जन्म-मरण--दोनों के ही परे हैं;
जन्म-जन्मांतरों के रहस्यों के ज्ञाता हैं,
कालातीत हैं!

★

आदि से भी पूर्व आप थे,
अंत के बाद भी आप होंगे,
आप जो हैं, सो हैं——बस अभी और यहीं——
इसी क्षण और अनंत-अनंत क्षणों में भी !

अतएव
वर्षों की काल गणना में
आपको प्रतिबद्ध करना अनधिकार प्रयास होगा,
शाश्वत सत्य को अस्वीकारना होगा

तथापि
संसार का सीमित बोध
मात्र ४० वर्षों से
आपके इस लौकिक अस्तित्व से परिचित है;
इस नाते
आज की इस मंगल-वेला पर,
आचार्यश्री !
आप स्वीकार करें
हमारे
शत-शत वंदन,
शत-शत अभिवादन,
शत-शत अभिनंदन,
शत-शत नमन !

—किशोरीरमण टण्डन

★

मैं जो हूं सो हूं

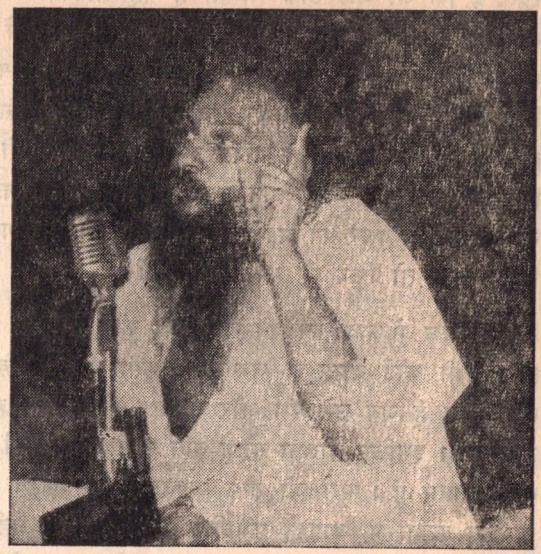

वार्तालाप :

श्री नानूभाई के साथ

एक सवाल नहीं है। पहली बात तो यह कि मैं निपट एक व्यक्ति की भांति जो मुझे ठीक लगता है वह मैं कहता हूं। न तो मेरी कोई संस्था है, न कोई संगठन। हां, कोई संगठन बनाकर मेरी बात उसे ठीक लगती है और लोगों तक पहुंचाए तो वैसा संगठन जीवन जागृति केन्द्र है। वह उनका संगठन है जिन्हें मेरी बात ठीक लगती है और वह लोगों तक पहुंचाना चाहते हैं। लेकिन मैं उस संगठन का हिस्सा नहीं हूं और उस संगठन का मेरे ऊपर कोई बन्धन नहीं है। इसलिए वह संगठन बहुत मुश्किल है, क्योंकि कल मैंने कुछ कहा था, वह संगठन के लोगों को ठीक लगता है, आज कुछ कहता हूं, नहीं ठीक लगता है। वे मुश्किल में पड़ जाते हैं। मेरी तो उनसे कोई शर्त नहीं है, उनसे मैं बंधा हुआ नहीं हूं, इसलिए जितनी प्रवृत्तियां चलती हैं, जिन्हें मेरी बात ठीक लगती है, उनके द्वारा चलती हैं। मेरे द्वारा तो सिर्फ एक ही प्रवृत्ति चलती है कि जो मुझे ठीक लगता है वह मैं कहता रहता हूं। उससे

ज्यादा मेरी कोई प्रवृत्ति नहीं है। इसलिए निरंतर निवेदन करता रहता हूं कि जो मुझे ठीक लगता है वह आपको भी ठीक लगे, यह जरूरी नहीं है। बहुत ज्यादा संभावना तो यही है वह न लगे। क्योंकि दो व्यक्तियों को एक सी बात ठीक लगे, यह एक असंभावना है। असल में दो व्यक्ति इतने भिन्न भिन्न हैं कि एक ही बात पर राजी अगर होते हैं तो सिर्फ अज्ञान के कारण राजी होते हैं, ज्ञान के कारण दो व्यक्ति राजी नहीं होते। तो पूछा जा सकता है कि फिर मैं क्यों कहता हूं अगर दूसरे को मुझे राजी नहीं करना है, प्रभावित नहीं करना है, दूसरे को अपने साथ बांधना नहीं है, संगठन नहीं, अनुयायी नहीं, शिष्य नहीं, तो फिर मैं क्यों करता हूं?

असल में आज तक निरंतर तभी कोई बोला है जब उसे संगठन बनाना हो। तभी कोई बोला है जब उसे किसी को प्रभावित ही करना हो। तभी तक बोला है जब उसे पंथ और संप्रदाय ही बांधना हो। इसलिए यह सवाल उठता है। इसलिए बोलना सहज बात न रह गयी। मैं बोलने को अत्यंत सहज बात मानता हूं। मुझे जो ठीक लगता है उसे कहने में मुझे आनंद आता है इसलिए कहता हूं, आपको प्रभावित करने के लिए नहीं। एक फूल खिलता है और उस फूल से सुगंध झरती है। यह रास्ते पर चलने वाले लोगों को प्रभावित करने के लिए नहीं। फूल को आनंद है, वह खिला है, उसकी सुगंध मिलती है। मैं जब आपसे बोल रहा हूं तो मैं आपको प्रभावित करने के लिए नहीं। जो मुझे आनंदपूर्ण लगता है बोलना, वह बोलता हूं। मेरी अपनी समझ यह है कि जो आपको प्रभावित करने के लिए बोल रहा है वह आपका दुश्मन है, क्योंकि किसी भी तरह की प्रभावित करने की चेष्टा बहुत गहरे में दूसरे व्यक्ति को गुलाम बनाने की चेष्टा है। प्रभावित होना आध्यात्मिक गुलामी है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि लोग प्रभावित करने के डर की वजह से बोलेंगे नहीं, कहेंगे नहीं। एक चित्रकार एक पेंटिंग बना रहा है। हो सकता है वह सिर्फ प्रभावित करने के लिए बना रहा हो। यह भी हो सकता है कि दूसरों से कोई प्रयोजन ही न हो। बनाना उसका आनन्द हो और वह जब दूसरों को दिखा रहा है जब भी सिर्फ अपने आनंद की अभिव्यक्ति की भांति। शब्द भी चित्र की भांति या रंगों की भांति अभिव्यक्ति हैं। आपको प्रभावित करने के लिए या अपने को व्यक्त करने को। इसलिए मैं निरंतर निवेदन करता रहता हूं कि भूल से मुझसे प्रभावित न हों। लेकिन ध्यान रहे, प्रभावित होने के दो ढंग हैं। मेरे पक्ष में प्रभावित होना भी प्रभावित होना है, मेरे विपक्ष में प्रभावित भी

प्रभावित होना है। इसलिए इस ख्याल में मत रहना कि जो मेरे पक्ष में हैं वे मुझसे प्रभावित हो गये हैं और जो विपक्ष में हैं वे प्रभावित नहीं हुए। विपक्ष में जो हैं वे भी मुझसे प्रभावित हैं। प्रभावित होने से बचना हो तो पक्ष-विपक्ष से बचना पड़ता है, नहीं तो प्रभाव पड़ ही जाता है। जो आदमी वेश्या के घर की तरफ जा रहा है वह भी प्रभावित है, जो वेश्या से बचकर दूसरे रास्ते से गुजर रहा है वह भी प्रभावित है। अपने प्रभाव के दो ढंग हैं। अक्सर हमें लगता है कि पक्ष वाला प्रभावित है, विपक्ष वाला प्रभावित नहीं है। विपक्ष वाला भी उतना ही प्रभावित है।

मार्क्स मरा तो उसकी कब्र पर बहुत लोग नहीं थे जो उसे विदा करने गये थे—दस-बीस मित्र थे। फिर भी एंजिल्स ने जो उसकी कब्र पर दो बातें कही हैं उनमें से एक बात बड़ी कीमती थी। बीस-पच्चीस आदमी जिसको विदा करने आये हों उसकी कब्र पर बोलते हुए एंजिल्स ने कहा कि मार्क्स दुनिया का बहुत बड़ा आदमी है। एक आदमी ने पूछा—जिसको विदा करने बीस-पच्चीस लोग आये उसको आप बहुत बड़ा आदमी कहते हैं? एंजिल्स ने कहा—इसलिए मैं बड़ा आदमी कह रहा हूं कि मार्क्स की कोई बात सुने तो प्रभावित हुए बिना नहीं बच सकता। उस आदमी ने कहा—बहुत से लोग मार्क्स के दुश्मन हैं। तो एंजिल्स ने कहा—मैं यही कह रहा हूं, या तो पक्ष या विपक्ष। मार्क्स के संबंध में कोई निर्णय लेना ही पड़ेगा। यही प्रभाव है।

लेकिन मैं कोई बड़ा आदमी नहीं हूं और मैं मानता हूं सब बड़े आदमियों ने दुनिया को नुकसान पहुंचाया है, क्योंकि दूसरे को छोटा बनाये बिना बड़ा होना असंभव है। दूसरों को छोटा बनाना ही पड़ेगा बड़े होने के लिए। मैं कोई बड़ा आदमी नहीं हूं और मैं मानता हूं कि बड़ा आदमी होने की जो आकांक्षा है वही दूसरे को प्रभावित करने का रूप लेती है। और बड़े आदमी होने की जो आकांक्षा है वह बहुत गहरे में इन्फिरियरिटी काम्प्लेक्स से, किसी हीनता की ग्रंथि से, पैदा होती है। इसलिए सब बड़े आदमी बहुत भीतर हीन ग्रंथि से पीड़ित होते हैं। वे दूसरों को प्रभावित करके अंततः अपने को प्रभावित करना चाहते हैं कि मैं बड़ा आदमी हूं। इतने लोग मुझसे प्रभावित हैं तो बड़ा आदमी होना ही चाहिए। दूसरों को प्रभावित करके वे अपने को विश्वास दिलाना चाहते हैं। मैं जो हूं उसमें राजी हूं। आपको प्रभावित करके मैं अपने को कोई विश्वास नहीं दिलाना चाहता कि मैं कौन हूं। मैं जो हूं, उससे मैं राजी हूं और छोटे और बड़े दोनों की परिभाषा से बाहर खड़ा हूं, क्योंकि

छोटे और बड़े की परिभाषा दूसरों से तुलना करने से पैदा होती है। और मेरी ऐसी समझ है कि एक एक आदमी इतना अपने जैसा है कि कंपेरिजन असंभव है। तुलना हो नहीं सकती। आप मुझसे बड़े हैं या छोटे, यह सवाल असंगत है इसलिए, क्योंकि मैं मैं हूं, आप आप हैं। कोई तुलना का उपाय नहीं है। मैं मानता हूं, एक एक मनुष्य अतुलनीय है, इसलिए छोटे-बड़े की सब बातें मुझे बकवास मालूम पड़ती हैं। इसलिए प्रभावित करने का तो कोई सवाल नहीं है। लेकिन अपनी बात कहना जरूर चाहता हूं और अपनी बात मैं आपको सुनने के लिए साझीदार भी बनाना चाहता हूं। जो मुझे दिखायी पड़ता है वह मैं आपसे निवेदन कर देना चाहता हूं। वह निवेदन है, वह आग्रह नहीं है। मानने, न मानने के लिए आपके लिए छूट है। मेरा तो निवेदन यही है कि न आप मानने की फिक्र करना, न न मानने की। आप सुन लेना। वह आपको एक विचार की प्रतिक्रिया में ले आ सके तो काफी है। वह विचार प्रतिक्रिया अंततः मेरी न रह जायेगी, आपकी ही हो जायगी। लेकिन मेरे मित्र हैं, मेरे शत्रु हैं। मेरी तरफ से कोई मेरा मित्र नहीं है, मेरी तरफ से मेरा कोई शत्रु नहीं है। उनकी ही तरफ से वह हैं। क्योंकि मैं कोई कारण नहीं देखता मित्रता और शत्रुता की जो पोलरिटी है उसको बनाने का। हम सब साझीदार हैं एक जगत में। लेकिन मेरे मित्र कुछ करेंगे, मेरे शत्रु भी कुछ करेंगे।

नानूभाई ने बड़ा अच्छा सवाल पूछा। उन्होंने एक किताब छापी है 'आचार्य रजनीश काय मार्गे' उसमें मेरी फोटो भी छापी है। और मैं समझता हूं कि मेरे मित्र ने जितनी फोटो छापी हैं उन सबसे अच्छी फोटो छापी है। हालांकि किताब मेरी आलोचना है। मुझसे तो पूछा नहीं था फोटो छापते वक्त। मेरे मित्र ने भी नहीं पूछा। उनको प्रीतिकर लगता है कि वे मेरी शक्ल भी लोगों तक पहुंचा देते हैं। अब पहली बात यह कि मैं रोकता क्यों नहीं पोजिटिवली। मैं कह सकता हूं कि मत छापो फोटो। मैं कह सकता हूं, मत छुओ मेरे पैर। कभी मैंने किसी को कहा नहीं कि मेरे पैर छुओ। निश्चित ही दूसरी बात नानू भाई ने ठीक पूछी है कि आप पोजिटिवली कहते क्यों नहीं कि मत छुओ मेरे पैर। लेकिन मेरी समझ है कि जो आदमी कहता है छुओ मेरे पैर वह भी अहंकारी है, जो कहता है मत छुओ मेरे पैर वह भी अहंकारी है। असल में मैं कौन हूं जो आपको आज्ञा दूं कि आप क्या करो, छुओ कि न छुओ। मैं आपसे नहीं जाऊंगा कहने कि मेरे पैर छुओ। अगर कहने आऊं तो मैं खतरनाक आदमी हूं। मुझे कोई हक नहीं है कि मैं कहूं कि मेरे पैर छुओ! यह हक मुझे कहां है कि

मत छुओ। मैं दूसरे की स्वतंत्रता में इतनी भी बाधा नहीं डालना चाहता हूं।

कुछ दिन पहले की एक बात है। एक गांव में ऐसा हुआ जो नानूभाई को जानना अच्छा होगा। एक आदमी ने मेरा पैर न छुआ, मेरा सिर छुआ। दो आदमी साथ बैठे थे मेरे। उन्होंने कहा, यह क्या करते हो? मैंने कहा, उसे करने दो। उसे सिर छूने की मौज आयी है, उसे करने दो। इसलिए मैं आपसे निवेदन करता हूं कि किसी को अपना पैर भी मेरे सिर से छुलाने की मौज आ जाय तो मैं मना न करूंगा। अगर मना करूंगा तो आप मुझसे पूछना कि यह बात क्या है? पैर छूते वक्त मना नहीं किया और आपके सिर पर पैर छुला रहे हैं तो आप मना क्यों कर रहे हैं? नहीं करूंगा। नहीं, मेरी समझ यह है कि सब तरह के विधायक वक्तव्य श्रद्धा पैदा करवाते हैं। और आपको यह जानकर मजा होगा कि दुनिया में उन लोगों के पैर सर्वाधिक छुए गये हैं जिन्होंने कहा, मत छुओ, मत छुओ। लोगों ने कहा, अद्‌भुत आदमी है, इसके तो छूने ही पड़ेंगे। बुद्ध कहते हैं, मत छुओ मेरे पैर। लेकिन 'बुद्धं शरणं गच्छामि' जितना बुद्ध के सामने कहा गया है किसी के सामने नहीं कहा गया है। बुद्ध कहते हैं, मत बनाओ मेरी प्रतिमाएं। जितनी प्रतिमाएं बुद्ध की हैं उतनी किसी आदमी की नहीं हैं। आश्चर्य है। आदमी का मन बहुत आश्चर्यजनक है। निषेध ही आमंत्रण है। यहां दरवाजे पर लिख दो कि यहां झांकना मना है, फिर सूरत में इतने हिम्मत-वर आदमी बहुत मुश्किल से होंगे जो बिना झांके निकल जाएं। और अगर कोई सज्जन किसी वक्त संयम साधकर निकल गये तो फिर कोई बहाना खोजकर फिर इस गली से उनको लौटना पड़ेगा। और अगर दिन में हिम्मत करके न लौट पायें, तो रात सपने में जरूर लौटेंगे। वहां है क्या? मेरे पैर में कुछ भी नहीं है। इतना भी नहीं है कि मैं आपसे कहूं कि मत छुओ, इतना भी नहीं है कि मैं निषेध करूं। निषेध ही आमंत्रण है। इसलिए मैं आपको कोई आज्ञा नहीं देना चाहता। आज्ञा में ही गुरू बनना शुरू हो जाता है। आज्ञा पूरी होती है, यह सवाल नहीं है। पैर छूने की या नहीं छूने का यह सवाल नहीं है। आज्ञा जो आप कहते हैं, यह करो, यह मत करो, वहां गुरू बनना शुरू हो जाता है। मैं किसी का गुरू नहीं हूं। ठीक उन्होंने पूछा है कि आप शिष्य जाने में बनाते हो या अनजाने में? नहीं, न जानकर बताता हूं, न अनजाने, लेकिन कोई बन जाय तो मेरे पास कोई उपाय नहीं है उसे रोकने का। मुझे पता नहीं चलता है। पता चलता है तब तो मैं लड़ता हूं। कोई आकर मुझे कहता है कि मैं आपका शिष्य हूं तब तो मैं लड़ता हूं। लेकिन कोई आये ही न, मुझे पता ही न चले तब बड़ी कठिनाई हो

जाती है। और अगर मुझसे कोई कहने भी आता है कि मैं आपका शिष्य हू तब भी मैं यह नहीं कहता कि तुम मेरे शिष्य नहीं हो क्योंकि यह हक मुझे नहीं है। इतना ही मैं कहता हूं कि मैं तुम्हारा गुरू नहीं हूं, क्योंकि दूसरों को मैं कैसे रोक सकता हूं। इतना ही मैं कह सकता हूं कि मैं तुम्हारा गुरू नहीं हूं। न जाने, न अनजाने, मैंने किसी का गुरू होने का भार नहीं लिया है। क्योंकि मैं मानता हूं, सभी गुरू पंगु करने वाले सिद्ध हो गये हैं। असल में गुरू बनने का मतलब यह है कि तुम्हारा बोझ मैं लेता हूं। मैं किसी का बोझ नहीं लेता हूं। अपना ही बोझ जिन्दगी में काफी है। किसी दूसरे का बोझ लेने का सवाल नहीं है और अगर मुझे कोई बात ठीक लगती है तो वह मैं आपसे कह देता हूं। लेकिन इससे मेरा आपका कोई लेन-देन का संबंध नहीं बनता है। बल्कि मैं अनुगृहीत हूं कि आपने सुन लिया। आपकी तरफ से अनुग्रह नहीं मानता क्योंकि लेन-देन के बड़े सूक्ष्म नियम हैं। कहीं पैसे लिये जाते हैं, कहीं श्रद्धा ली जाती है, कहीं अनुग्रह लिया जाता है; लेकिन सब बड़े सूक्ष्म नियम हैं। आपसे मैं कुछ नहीं लेता। धन्यवाद देता हूं आपको कि आपने मेरी बात सुन ली। यह भी क्या कम है? किसके पास समय है, किसके पास सुविधा है? बात खत्म हो गयी। इसके आगे मुझे प्रयोजन नहीं है। लौटकर हिसाब नहीं लूंगा कि आपने माना कि नहीं माना।

लेकिन जो हमारा देश है यह हजारों साल से गुरुओं के नीचे जी रहा है। यह बिना संबंध बनाये नहीं रहता। यह संबंध बनाने की चेष्टा करता है। आदेश ही मानता है, चाहे विपरीत आदेश ही क्यों न हों। यह कहता है, कुछ हमें आदेश दे दो जो हम मानकर चलें। मैं कोई आदेश नहीं देता। मेरा जो भी है, वह निवेदन है; और जैसा नानूभाई ने कहा कि अब धीरे धीरे व्यवस्थित हो रहा है, ढांचा बन रहा है, वह मेरी तरफ से नहीं, बल्कि जो बना रहे हैं वह मेरी तरफ से रोज मुश्किल में हैं। असल में मेरे आसपास ढांचा बनाना मुश्किल ही है क्योंकि मैं कोई ढांचे का आदमी नहीं हूं। नारगोल में जमीन मिलती थी, मेरे मित्रों ने सब विधान बनाया था, केबिनेट तक बात हो गयी थी। मंत्री राजी थे छः सौ एकड़ जमीन देने को। दो-चार दिन में सब तय हो जाने वाला था। गांधी जी के संबंध में एक वक्तव्य मैंने दिया। मित्रों ने आकर कहा कि इस वक्तव्य को अभी बाहर प्रकट न किया जाय, पहले वह जमीन मिल जाय, फिर हम वक्तव्य प्रकट करेंगे। मैंने कहा, जमीन के लिए अगर वक्तव्य रुकेगा तब तो अंततः मैं ही रुक जाऊंगा। जमीन जाने दो। मित्र बहुत दुखी हुए, मुझे छोड़कर ही चले गये। दुश्मनी हो गयी। क्योंकि मित्र जब दुखी होते हैं तो

दुश्मनी से कम पर नहीं रुकते । इसलिए मित्र बनाना खतरनाक है । इसलिए मैंने कहा, हम मित्र नहीं बनाते हैं, क्योंकि मित्र बनाने का मतलब है पोटेंशियल शत्रु बनाना। आज नहीं कल शत्रु बन सकता है । मित्र के सिवाय शत्रु कोई नहीं बनता है । निपट अकेला आदमी हूं, घूमता रहता हूं । यदि आपको अच्छी लगती है मेरी बात, आप चार मित्र मिलकर कुछ करते हैं, मैं आपको रोक नहीं सकता, लेकिन आप मुझे नहीं बांध सकेंगे किसी ढांचे में, किसी व्यवस्था में ।

अभी कार में आ रहा था तो एक बहन ने कहा कि अगर मैं छः महीने तुम्हारे पास रह जाऊं तो डुप्लीकेट बन जाऊं तुम्हारी सारी बातों की । मैंने कहा, वह तो हो जायगा, लेकिन तबतक ओरीजनल बदल जायेगा । तुम तो पक्की बन जाओगी लेकिन मैं तो नहीं रुका रहूंगा । मेरी कोई निष्ठा नहीं है, मेरी कोई श्रद्धा नहीं है इसलिए मेरे साथ ढांचा बनाना मुश्किल है, क्योंकि ढांचा बनता है श्रद्धा पर, निष्ठा पर । और ढांचा बनता है उन लोगों के साथ जिनमें एक तरह की कांसिस्टेंसी होगी, जो जो आज कहेंगे, कल भी कहेंगे, परसों भी कहेंगे, तब आप ढांचा बना सकते हैं । लेकिन अगर आप ढांचा बनायें, कल मैं कुछ कहूं, परसों कुछ कहूं तो ढांचा बन नहीं पायेगा सब कुछ गड़बड़ हो जायगा । मेरे जैसे लोगों के पास ढांचा कभी नहीं बना । इसलिए ढांचा तभी बनता है जब मैं मरने की तैयारी करूं कि आज मैं फाइनली मर जाता हूं । अब मैं कल से वही कहूंगा जो मैंने आज कहा । अब मेरे कल आज की पुनरुक्ति होंगे, अब मेरा कोई कल नया नहीं होगा । अब हर आने वाला कल, मेरे आज का ही रिपीटीशन होगा, तब ढांचा बनता है । अभी कुछ मित्र उत्सुक हैं । थोड़े दिन में थक जायेंगे, समझ जायेंगे कि आदमी गड़बड़ है, अब इसके पास ढांचे नहीं बन सकते । मगर वक्त लगेगा । दो-चार मित्र फ्रस्टेट होकर चले जाते हैं, वह अपना शुरू कर देते हैं, फिर वह चले जाते हैं । अभी इधर तीन साल के मेरे मित्रों के नाम का आप पता लगायेंगे तो आपको पता चल जायगा कि जो मित्र छः महीने पहले थे, छः महीने बाद मुझे नहीं मिलते । उसमें उनका कसूर नहीं है, कसूर जो है वह मेरा है । क्योंकि वह चाहते थे कांसिस्टेंसी । वह चाहते थे कि जो आपने कहा था वह अब इधर उधर मत करना और मैं कहता हूं जिन्दगी बहुत इनकंसिस्टंट है, सिर्फ मौत कंसिस्टंट है । जिन्दगी का भरोसा नहीं । हम सुबह सूरज से कहें कि तुम कल जैसे निकले थे वही रूप-रंग में निकलो; क्योंकि मैंने तुमसे कहा था कि भगवन, हम तुम्हारी पूजा करेंगे और आज तुम बदल गये ! कल बदलियां और रंग थीं, आज और रंग हो गयीं । सूरज कहेगा; तुम पूजा मत करो, लेकिन कोई और उपाय नहीं है ।

यह जो नानूभाई ने सवाल उठाया है सारा सवाल उचित है, मुल्क में बहुत मित्रों के मन में उठता है, लेकिन गहरे अर्थों में असंगत है। मुझसे उनका कोई वास्ता नहीं है। मैं निपट अकेला आदमी हूं, फिरता घूमता हूं, जो मुझे ठीक लगता है कहता रहता हूं। किसी को ठीक लगता है, मान लेता है, नहीं ठीक लगता है, नहीं मानता है। मैं न कोई मित्र बनाता हं, न कोई शत्रु बनाता हूं। वह सब आपकी तरफ से है, वह मेरा काम नहीं है। उसके लिए मुझे आप कभी भी जिम्मेदार नहीं ठहरा सकेंगे। मेरा काम इतना ही था कि मैंने कह दिया। और कल अगर लौटकर आपने कहा कि आपने कल यह कहा तो मैं कहूंगा कि कल का जो आदमी था वह मर चुका, मैं दूसरा आदमी हूं, वह आदमी हूं नहीं। इसलिए इन प्रश्नों की कोई संगति मुझसे नहीं है।

दूसरी बात सामान्य असामान्य की आपने उठाई है। उसके लिये यह कहना है कि मेरे लिए कोई मामूली, सामान्य आदमी नहीं है। जिसको सामान्य आदमी कहते हैं मेरे लिए कोई भी नहीं है। और जिसको असामान्य आदमी कहते हैं वह भी मेरे लिए कोई नहीं है। मैंने कहा कि तुलना में बड़ी हिंसा है। इस मुल्क में मैं जगह जगह घूमता हूं। सामान्य आदमी की तलाश की, मिला नहीं। जो भी मिला उसने कहा, ये सामान्य आदमी जो हैं, नहीं समझ सकेंगे। एक भी आदमी ने नहीं कहा कि मैं सामान्य आदमी हूं मैं नहीं समझ सकूंगा। प्रत्येक आदमी अपने तई विशेष है, और प्रत्येक आदमी की विशेषता है जो उससे हिंसा करवाती है कि दूसरा सामान्य है। कोई सामान्य नहीं है। सामान्य आदमी पैदा ही नहीं होता। अरबी कहावत मैंने सुनी है कि भगवान जब आदमी को बनाकर भेज देता है तो जिस आदमी को भी बनाता है उसके कान में कह देता है कि तुमसे बढ़कर आदमी मैंने कभी बनाया नहीं। सभी से कह देता है तो हरेक यह ख्याल लेकर आता है कि मैं विशेष और दूसरा सामान्य है। कोई सामान्य नहीं है, कोई विशेष नहीं है। या तो सभी सामान्य हैं या सभी विशेष हैं, और कोई सोचता हो कि मैं ऐसा वर्गीकरण करूं, ऐसी क्लास बनाऊं कि विशेष लोगों के लिए कुछ और कहूं और सामान्य लोगों के लिए कुछ और कहूं, यह मेरे वश के बाहर है। मेरे लिए ऐसा कोई वर्ग नहीं है और मेरे पास कहने के लिए दो बातें भी नहीं हैं। जो है वही है, वही कह सकता हूं। अगर आप भी चले जायें और दीवाल के सामने मुझे कहना पड़े, तो भी मैं वही कह सकता हूं जो आपसे कह रहा था।

दूसरी बात आपने कही कि यहां कोई मंडन मिश्र या शंकर नहीं बैठे हुए हैं। अच्छा ही है कि नहीं बैठे हैं क्योंकि मंडन मिश्र अब दुबारा होंगे तो

कार्बन कापी ही हो सकते हैं। हर आदमी एक बार होता है – मंडन मिश्र भी एक बार होते हैं और आप भी एक ही बार होते हैं। यूनीकनेस इतनी गहरी है कि एक आदमी दुबारा पुनरुक्त नहीं होता है। इसी लिए एक एक व्यक्ति की महिमा अलग है। वह जैसा है वह वैसा ही है। अगर बुद्ध अपने जैसे हैं तो जिसे हम सामान्य कहते हैं वह भी अपने जैसा है। कौन बुद्ध उसका मुकाबला कर सकता है? अगर वह बुद्ध का मुकाबला नहीं कर सकता है तो कौन बुद्ध उसका मुकाबला कर सकते हैं। लेकिन मनुष्य की चिन्तना, जो कि अहंकार केंद्रित रही सदा, उसने वर्गीकरण किये, विभाजन किये। शूद्र बनाये, ब्राह्मण बनाये। महापुरुष बनाये, सामान्य जन बनाये। ज्ञानी बनाये, अज्ञानी बनाये। इस जगत में वर्ग नहीं है, व्यक्ति ही है और एक व्यक्ति बिल्कुल अकेला है, दूसरा भी नहीं है कि उसका वर्ग बनाया जाय। वर्ग बनाने के लिए कम से कम दो तो चाहिए। तो मैं मंडन मिश्र की ज्यादा इज्जत नहीं करता आपसे, और न मंडन मिश्र से कम इज्जत करता हूं आपकी। मंडन मिश्र मंडन मिश्र हैं, आप आप हैं। दोनों अपनी जगह अद्भुत हैं, लेकिन मुझे जो निवेदन करना है वह मंडन मिश्र होते तो भी यही करता और आप हैं तो भी यही करूंगा। कोई उपाय ही नहीं है इसमें। एक फूल खिला है और रास्ते से मंडन मिश्र निकलें, तो वह फूल कोई दूसरी सुगन्ध नहीं फेंकता। और गांव का चमार निकला, बड़ा सामान्य आदमी निकला, तो अपनी सुगन्ध सिकोड़ नहीं लेता। नहीं, फूल अपनी सुगन्ध फेंकता रहता है। हां, ऐसे फूल हो सकते हैं प्लास्टिक के बनाये हुए और यांत्रिक कि जो आदमी देख कर सुगंध दें। पर तब प्रभावित करना लक्ष्य होगा। तो उन्होंने कहा सामान्य आदमी से और तरह की करिये बात आप, अन्यथा सामान्य आदमी को प्रभावित न कर सकेंगे। मैं प्रभावित करना नहीं चाहता इसलिए उस भाषा में मत पूछें। और आप कहते हैं, तत्व दर्शन की भाषा मत बोलिये। बड़ी मुश्किल बात है। बड़ी ही मुश्किल बात है। एक संगीतज्ञ से कहिये कि संगीत की भाषा में नहीं, जरा किसी और भाषा में संगीत सुनाइए। और एक चित्रकार से कहिये कि रंगों की भाषा मैं नहीं जानता हूं, जरा किसी और भाषा में चित्र बनाइये तब हम समझ सकेंगे। एब्सर्ड है। मैं जो हूं वही निवेदन कर सकता हूं। संगीतज्ञ हूं तो वीणा बजाऊँगा, चित्रकार हूं तो रंग पोतूंगा। जो मैं कर सकता हूं वही कर सकता हूं। मेरे भीतर कई तरह के आदमी नहीं हैं। मल्टी साइकिक नहीं हूं, एक ही तरह का आदमी हूं। इसलिए बहुत तरह के चेहरे बनाना भी बात मुश्किल है मेरे लिए। एक ही चेहरा है मेरे पास। सामान्य आदमी के सामने खड़ा

होता हूं और जिसको आप असामान्य कहते हैं उसके सामने खड़ा होता हूं तो भी वही हूं।

एक फकीर हिन्दुस्तान से कोई १४०० वर्ष पूर्व चीन गया—बोधिधर्म। जब वह चीन पहुंचा तो वहां के लोग बहुत परेशान हुए, क्योंकि वह दीवाल की तरफ मुंह करके बैठता था, लोगों की तरफ पीठ कर लेता था। जब चीन का सम्राट मिलने आया तो दूसरे फकीरों ने कहा, आप जरा कृपा कर, यह आदत छोड़ें। सम्राट मिलने आ रहा है, वह बहुत नाराज हो जायगा। आप उसकी तरफ पीठ करके बैठे हैं। आज दीवाल की तरफ मुंह न चलेगा, सामान्य आदमी के साथ चल गया, वह बात दूसरी है। सम्राट आया है। बोधिधर्म हंसने लगा। उसने कहा, मेरे लिए सामान्य आदमी और सम्राट भिन्न होता तब तो तुम जो कहते हो ठीक कहते हो। मेरे लिए तो कोई भी आये, मैं दीवाल की तरफ ही मुंह करूंगा। समझाया कि ऐसा क्यों पागलपन पकड़ लिया है कि दीवाल की तरफ मुंह कर रहे हो? तो उसने कहा कि दीवाल की तरफ मुंह रखने का कुल कारण इतना ही है कि लोगों की तरफ मैंने बहुत बार मुंह करके देखा, वहां भी दीवाल पायी, तो मैंने सोचा कि नाहक क्यों परेशानी करनी है।

नहीं, मेरे लिए फर्क नहीं है। आज तक दुनिया में बुद्ध भी आये, महावीर भी आये और विनोबा भी आये। मुझे ज्यादा पता नहीं है, लेकिन मैं मानता हूं कि विनोबा आग्रही थे, प्रचारक थे। और अगर आज नहीं हैं तो फ्रस्ट्रेशन के कारण। आग्रह था उनका कि ऐसी शक्ल दे देंगे, समाज को ऐसा बना देंगे। सत्याग्रह कहीं होगा आग्रह? यह आग्रह था। महावीर आग्रही हैं, गांधी आग्रही हैं, विनोबा आग्रही हैं। वे शक्ल देना चाहते थे, वे व्यक्ति को एक ढांचा देना चाहते थे कि ऐसा व्यक्ति होना चाहिए, एक नैतिकता देना चाहते थे, एक धर्म देना चाहते थे, एक आदत देना चाहते थे। मैं आग्रही नहीं हूं। मैं कोई ढांचा आपको देना नहीं चाहता। मैं नहीं कहता, ऐसा आदमी अच्छा आदमी होगा और जैसे हो, हो नहीं सकते। इसलिए ढांचे की बात करने वाले लोग गलती ही कर रहे हैं। आदमी मशीन नहीं है। मैं तो अच्छे आदमी का भी ढांचा नहीं देना चाहता; क्योंकि जब मैं देखता हूं मुझे लगता है कि अकेला राम रह जाय तो दुनिया बहुत बेरौनक हो जायगी रावण के बिना—बहुत बुरी हो जायगी। मुझे तो लगता है रावण उतना ही जरूरी है जितना राम है। और मुझे लगता है रामलीला कोई करके देखे रावण के बिना, तो पता चलेगा। फिर रामलीला होती नहीं, आगे बढ़ती नहीं। रामलीला में रावण जरूरी हिस्सा है। जिसको

हम बुरा कहते हैं मेरे मन में उसकी भी स्वीकृति है। जिसको हम हिंसक कहते हैं, मेरे मन में उसकी भी स्वीकृति है, जिसको हम पापी कहते हैं मेरे मन में उसकी भी स्वीकृति है। असल में मेरे मन में किसी की अस्वीकृति नहीं है, क्योंकि अस्वीकृति हुई कि प्रभावित करने की चेष्टा शुरू हुई। जैसे ही मुझे लगा कि आप गलत हैं, आपका कुर्ता ऐसा होना चाहिए और आपके बाल ऐसे कटने चाहिए और आपको इस ढंग से बैठना चाहिए। मैंने आपके जैसे अस्वीकार किया कि मैंने आपके साथ दुर्व्यवहार शुरू किया। दुर्व्यवहार के बहुत ढंग हैं और गुरू जितना दुर्व्यवहार करता है उतना कोई भी नहीं करता है; क्योंकि वह आपको काटता है। वह कहता है कि ढांचे में आओ, ब्रह्मचर्य साधो, अहिंसा साधो, सत्य साधो, यह साधो, वह साधो—थोपता चला जाता है। वह आपको काट-पीट के जैसे पत्थर कटता हो, कोई मूर्ति बनती हो, ऐसा काटता है। महावीर को भी आग्रह है काटने का लोगों को। बुद्ध को भी आग्रह है, गांधी को भी, विनोबा को भी। इसलिए आप मुझे मत गिनें। उन आग्रही लोगों से मेरा कोई लेना-देना नहीं। वे आदमी को एक शक्ल देना चाहते हैं। मैं मानता हूं कि एक आदमी को किसी दूसरे आदमी को शक्ल देने का हक नहीं है। यही हिंसा है। जैसे ही कोई पति कहता है कि पत्नी ऐसी होनी चाहिए कि हिंसा शुरू हो गयी। बाप कहता है कि बेटा ऐसा होना चाहिए, हिंसा शुरू हो गयी। जब भी कोई किसी दूसरे से कहता है कि ऐसे बनो तब भीतर से हिटलर बोलने लगता है। वह चाहे खद्दर के वस्त्र पहने हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता!

नहीं, यह जो आदमी है, यह टार्चर करने के बहुत कुशल रास्ते खोजता है। जो बहुत नासमझ हैं वे आपकी छाती पर छुरी रख देते हैं आपको टार्चर करने के लिए। जो ज्यादा समझदार हैं वे अपनी छाती पर छुरी रख लेते हैं और कहते हैं हम अनशन करके मर जायेंगे लेकिन तुम्हें ऐसा होना चाहिए। यह सब छुरेबाजी है। दूसरे की छाती पर रखते हो तो हिंसा है, अपनी छाती पर रखते हो तो अहिंसा कैसे हो गयी? नहीं, असल में जैसे ही मैं दूसरे आदमी को इन्कार करता हूं हिंसा शुरू हो गयी। जैसे ही मैं कहता हूं कि दूसरा आदमी ऐसा नहीं, तो मैंने अपने को थोपना शुरू कर दिया। नहीं, यह मेरा प्रयास नहीं है। मैं मानता हूं रावण अपनी जगह है और बड़ा जरूरी है और बड़ा प्यारा है। राम अपनी जगह हैं। और अगर मैं पूजा करने जाऊंगा तो दोनों की करूंगा या दोनों की नहीं करूंगा। लेकिन हमें चुनाव करना पसन्द है। स्पष्ट कहिये, राम के पक्ष में हैं कि रावण के। मैं आदमी

के पक्ष में हूं। रावण के भी नहीं और राम के भी नहीं। आदमी एक अनंत घटना है, उसमें अनंत रूप हैं। मुझे गुलाब का फूल भी पसंद है और चमेली का, चंपा का और धतूरे का भी। मुझे केक्टस भी पसंद है कांटे वाला और मुलायम फूलों वाला पेड़ भी पसन्द है; लेकिन मैं नहीं कहता कि केक्टस को कांटे झाड़ देना चाहिए। मैं परमात्मा का यह जगत जैसा है इसको समग्रता से स्वीकार करता हूं। न बुद्ध स्वीकार करते हैं, न महावीर स्वीकार करते हैं, न गांधी स्वीकार करते हैं, न विनोबा स्वीकार करते हैं। यह जो अस्वीकृति है वह प्रभावित करने की, प्रोपेगेंट करने की, चिन्ता आ जाती है उसमें कि आदमी को बदलो, संगठन बनाओ, समूह बनाओ, घेरा बनाओ। बदलो आदमी को। आदमी को ऐसा बदलो जैसा हम चाहते हैं। लेकिन आप कौन हैं? आपको किसने कहा कि आदमी बदलो? आप हैं कौन? आप भी एक आदमी हैं, थोड़ा बोल लेते हैं ढंग से या थोड़े कपड़े छोड़कर नंगे खड़े हो जाते हैं या कि बीड़ी नहीं पीते कि पान नहीं खाते। यह आपकी मौज है। लेकिन जब वह दूसरा आदमी बीड़ी पी रहा है, जब नहीं बीड़ी पीनेवाला उसको पुलिस की आंखों से देखता है तब हिंसा शुरू हो जाती है। कौन हकदार है? कोई हकदार नहीं है किसी पर। इसलिए मुझे मत गिनें। मुझे न कोई प्रचार करना है, न कोई सर्वोदय लाना है और न कोई समाज का आदर्श बदलना है, न एक व्यक्ति को ऐसा बनाना है वैसा बनाना है। जब मैं कुछ कह रहा हूं तो वह कहना मेरा आनन्द है। उससे ज्यादा नहीं। हां, अगर मुझे लगता है कि बीड़ी पीने में मैंने बहुत दुख पाया, तो मैं निवेदन करूंगा कि बीड़ी पीकर मैंने बहुत दुख पाया। लेकिन तब भी मैं आपको कंडमनेशन से नहीं देख सकता कि आप बीड़ी पी रहे हैं; क्योंकि कोई आदमी बीड़ी पीकर सुख पा रहा हो इसकी पूरी संभावना है। मैंने दुख पाया वह मैं कह देता हूं। लेकिन मेरा दुख सबका दुख नहीं है और मेरा सुख सबका सुख नहीं है। एक आदमी का नर्क दूसरे का स्वर्ग हो सकता है। एक आदमी का स्वर्ग दूसरे का नर्क हो सकता है। यह भिन्नता की मेरे मन में स्वीकृति है।

कुछ ही दिनों पहले की बात है जब मैं एक ट्रेन में सवार हुआ। जिस कंपार्टमेंट में था उसमें एक मित्र और सवार थे। वह मुझे देखकर एकदम घबरा गये जैसा कि महात्माओं को देखकर घबरा जाना चाहिए। एकदम उन्होंने नमस्कार किया और कहा, "महात्मा जी!" लेकिन मुझे ऐसा लगा कि मेरा आना उनको अच्छा नहीं लगा। असल में महात्मा का आना किसी को भी जिंदगी

में अच्छा नहीं लगता, क्योंकि महात्मा बिना गड़बड़ किये नहीं रह सकता, नहीं तो उसका महात्मापन खो जायेगा। मैंने उनसे कहा, ऐसा लगता है, मेरे आने से आप सुखी नहीं हुए। मैं दूसरे कम्पार्टमेंट में चला जाऊं ? उन्होंने कहा, नहीं नहीं, बड़ा आनन्द हुआ आपके आने पर। मैंने कहा, आप जो कह रहे हैं वह कुछ और कह रहे हैं, आपका चेहरा कुछ और कह रहा है। उन्होंने कहा, क्या आप मेरे भीतर की बात पकड़ते हैं? मैंने कहा, भीतर की बात नहीं पकड़ता, आपका चेहरा इन्कार कर रहा है। उन्होंने कहा, आपने बात ही उठा दी तो मैं आपसे कह ही दूं कि मैं सफर में चलता हूं तो मुझे शराब पीने की आदत है। मैंने आर्डर देकर रखा है। सोडा आ गया, शराब आ गयी और आपको देखकर मैं डर गया और मैंने कहा अब मुश्किल हो गयी ! अब न शराब पी सकता हूं, न आमलेट खा सकता हूं। मैंने कहा, लेकिन क्या आप मुझे शराब पिलायेंगे? उन्होंने कहा, नहीं नहीं, मैं क्यों पिलाऊंगा ? मैंने कहा, आप पियेंगे तो मैं क्यों रोकूंगा ? अगर आप मुझे जबरदस्ती शराब पिलायें, जितनी हिंसा यह होगी उससे कम हिंसा यह न होगी कि मैं आपको शराब पीने न दूं। ये दोनों बराबर हिंसाएं हैं। आप मजे से पियें। उन्होंने कहा, नहीं, एक संत के रहते हुए मैं कैसे पियूंगा ! मैंने कहा, कैसे पागल हो गये हैं ! शराब पीनी है कि संत को पीना है? मैं दुष्ट आदमी नहीं हूं। अगर आपको फिर भी तकलीफ हो तो मैं चला जाऊं। उन्होंने कहा, नहीं नहीं, आप बैठें। उन्होंने बड़े डरते डरते शराब पी। बाद में उन्होंने मुझसे एक बात कही जो हिन्दुस्तान भर के सब संतों को, जिन्दा और मुर्दों को बता देनी है। उन्होंने मुझसे कहा कि आप संत जैसे दिखायी पड़ने वाले पहले आदमी हैं जो मुझे भले आदमी मालूम पड़े। असल में संत भले आदमी हो ही नहीं सकते। अधिकतर संत सैडिस्ट होते हैं, या मेसोचिस्ट होते हैं। या तो वे दूसरे को सताते हैं या खुद को सताते हैं। और जो खुद को सताने में कुशल होता है वह दूसरे को सताने का अधिकार पा जाता है। विनोबा वगैरह को मत लाएं। मेरे हिसाब से तो उन सब बेचारों की मानसिक चिकित्सा होनी चाहिए। मेरे हिसाब से ये कहीं जाते नहीं। ये बहुत अजीब तरह की विकृतियों में रह रहे हैं। लेकिन यह मैं कह रहा हूं, ऐसे विनोबा हैं, ऐसा आपको मानने को नहीं कह रहा हूं। ऐसा मुझे दिखायी पड़ रहा है। मेरा दिखायी पड़ना गलत हो सकता है। मेरे हिसाब से मनुष्य जाति को अब तक जिन लोगों ने ढालने की कोशिश की उन ढालने वाले लोगों में ९० प्रतिशत लोग

मानसिक रूप से रुग्ण थे इसलिए यह मनुष्यता पैदा हुई जो मानसिक रूप से रुग्ण है और यह विकृति तो आयी है, पैदा की गयी है। इसमें महावीर का हाथ है, बुद्ध का हाथ है, कृष्ण का हाथ है, क्राइस्ट का हाथ है, मुहम्मद का हाथ है। इन सारे लोगों ने, इन सारे शिक्षकों ने मनुष्यता को ढालने की कोशिश की और जो मनुष्यता पैदा हुई है, वह मनुष्यता बिल्कुल पागल मालूम पड़ती है। इस पागल मनुष्यता में बुद्ध को बचाया नहीं जा सकता, महावीर को हटाया नहीं जा सकता। उनका हाथ जरूरी है। जबतक सीधे सत्यों को देखने की हिम्मत न जुटायें, बड़ी मुश्किल होती है। असल में अच्छे आदमी अनेक लोगों को बुरा बनाने का कारण बनते हैं। अच्छे बाप के घर में अच्छा बेटा पैदा होना बहुत मुश्किल हो जाता है। गांधी के बेटों से पूछें, हरिदास से पूछें, तुझे क्या हो गया है पागल, इतना अच्छा बाप मिला और तू मांस खाये, कि तू शराब पिये, कि तू मुसलमान हो जाय? तुझे क्या हो गया? इसमें गांधी का हाथ था। इसमें गांधी का जो अति टार्चर करने वाला व्यक्तित्व है, जो कहता है कि नहीं, यह मत खाना। इसकी अंतिम परिणति यही होने वाली है कि जो नहीं खाना है वह खाना। अगर कभी भी दुनिया में कहीं लेखा-जोखा होता होगा तो हरिदास के चक्कर में गांधीजी फंसेंगे। जब बाप थोपता है अपने को बेटे पर, तो बेटा बगावत के लिए तैयार रहता है। और जब संत थोपता है अपने को समाज पर तो समाज को विकृत करता है। नहीं, मैं थोपने वाले लोगों के पक्ष में नहीं हूं। कम से कम मैं किसी तरह के थोपने के सहयोग में खड़ा नहीं हो सकता। मैं इन क्रिमिनल्स के साथ खड़ा होने को राजी नहीं हूं। मेरे लिए जो अपराधी है वह है। आपसे नहीं कहता कि आप अपराधी मान लेना ऐसों को, क्योंकि फिर यह भी थोपना हो जायगा।

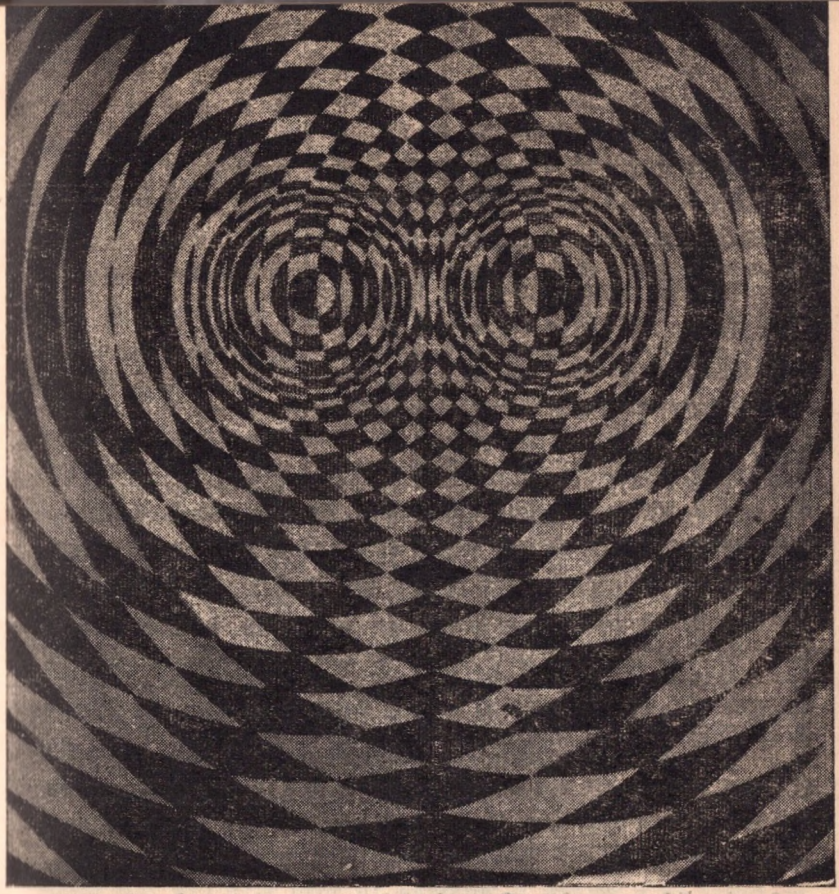

एतद्धै तत्

डॉ. रामचन्द्र प्रसाद

पटने में आचार्य रजनीश की वह पहली धर्मदेशना थी और मुझे ऐसा लगा था कि तथागत की भाँति उनका भी अवतरण सत्वों को ज्ञान का प्रतिबोध कराने के लिए हुआ था। जब वे धर्मोपदेश के पूर्व समाधिस्थ हुए तो मैंने देखा :

उनका ललाट शुद्ध सोने का सा है,
उनकी आँखें झरने पर बैठी हुई कपोतियों के समान हैं,
और, लगता है, वे दूध की धुली हैं
तथा बड़ी ही सुडौल हैं।
उनके पाँव स्फटिक स्तम्भों की तरह हैं
जो शुद्ध सोने के आधारों पर रखें हों।
उनकी वाणी अति मधुर है,
वे परम सुन्दर हैं।[1]

वे समाधि से व्युत्थित हुए और उपस्थित जन-समूह को सम्बोधित करते हुए कहा : "प्रिय आत्मन्, एक रेगिस्तानी सराय में एक बड़ा काफिला आया था। यात्री थके हुए थे और ऊंटों को आराम की जरूरत थी। लेकिन जब खूँटियाँ गाड़ी जा रही थीं तब पता चला कि एक ऊँट की खूँटी और रस्सी खो गई है। उस ऊँट को खुला छोड़ना अयुक्त था, क्योंकि रात के अंधेरे में उसके भटक जाने की सम्भावना थी। काफिले के मालिक ने सराय के स्वामी से एक खूँटी और रस्सी की माँग की। सराय के स्वामी ने कहा : 'मेरे पास न तो कोई खूँटी है और न कोई रस्सी, लेकिन तुम चाहो तो जाकर खूँटी गाड़ दो, रस्सी बाँध दो और ऊँट से कहो कि वह सो जाय।' काफिले का मालिक बहुत हैरान हुआ। उसने कहा कि यदि खूँटी और रस्सी ही हमारे पास होती तो हम खुद ही न बाँध देते? हम कौन सी खूँटी गाड़ दें और कौन सी रस्सी बाँध दें? सराय के मालिक को हँसी आ गई और उसने कहा : 'यह जरूरी नहीं कि ऊँट को असली खूँटी और असली रस्सी से ही बाँधा जाय। नकली खूँटी गाड़ दो, उसके गले में झूठी रस्सी बाँध दो और उससे कहो कि वह सो जाय।' ऊँटों के स्वामी को विश्वास तो न हुआ, फिर भी विवश हो उसने झूठी खूँटी गाड़ी। जो खूँटी नहीं थी उस पर उसने चोटें कीं। ऊँट ने चोटें सुनीं और समझा कि खूँटी गाड़ी जा रही है। जो रस्सी नहीं थी उसे उसने ऊँट के गले में बाँधा। ऊँट ने समझा कि रस्सी बाँधी जा रही है और वह सो गया। प्रातःकाल जब काफिला उस सराय से रवाना होने लगा तो काफिले के मालिक ने निन्यानबे ऊँटों की खूँटियाँ उखाड़ीं और रस्सियाँ खोलीं। लेकिन सौ वें ऊँट

---

१. 'सुलेमान का सर्वश्रेष्ठ गीत', ५। दे. धर्मग्रन्थ (इलाहाबाद, १९६५), पृ० ७३८।

की न तो कोई खूंटी थी और न कोई रस्सी। इसलिए न तो उसकी खूंटी उखाड़ी गई और न रस्सी खोली गई। निन्यानबे ऊँट उठकर खड़े हो गए, पर सौवें ऊँट ने उठने से इनकार कर दिया। उसका मालिक बहुत परेशान हुआ। सराय के वृद्ध स्वामी से जाकर उसने शिकायत की और कहा कि तुमने कौन सा मंत्र पढ़ दिया है जिसके कारण मेरा ऊँट जमीन से बँध गया है और उठाने पर भी नहीं उठता। सराय के मालिक ने कहा: 'जाकर पहले खूंटी तो उखाड़ो, रस्सी तो खोलो।' ऊँट के मालिक को उस बूढ़े की जड़ता पर ईषत् क्रोध हुआ और उसने कहा: 'वहां न तो कोई खूंटी है और न कोई रस्सी।' बूढ़े ने कहा: 'तुम्हारे लिए वे भले ही न हों, पर ऊँट के लिए हैं। जाओ, खूंटी उखाड़ो और रस्सी खोलो।' झूठी खूंटी उखाड़ी गई और रस्सी से ऊँट के गले को मुक्त किया गया। ऊँट उठकर खड़ा हो गया। सराय के वृद्ध मालिक ने इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहा: 'ऊँटों की बात तो जाने दो, खुद तुम और हम झूठ की ऐसी ही खूंटियों से बंधे हैं। इन खूंटियों का कोई अस्तित्व नहीं, पराधीनता की ऐसी ही रस्सियाँ हमारे गले में लगी हैं जिनकी कोई सत्ता नहीं। मुझे ऊँटों का कोई अनुभव न था, परन्तु मनुष्यों के अनुभव के आधार पर ही मैंने तुम्हें ऐसी सलाह दी थी।'"

देखते-ही-देखते प्रवचन के साठ मिनट बीत गए।

मैंने तरह-तरह की बोधकथाएँ पढ़ी और सुनी थीं। प्रवचन सुने थे, धर्म-देशनाएँ सुनी थीं। परन्तु किसी भी धर्मोपदेशक ने आजतक न तो शास्त्रों का इतना सशक्त खंडन किया था और न किसी ने गुरुडम का — 'कठमुल्लों' का — इतना पुरजोर विरोध ही। न तो अंधश्रद्धा का और न मन्दिरों, मस-जिदों तथा गिरजाघरों में ईश्वर की खोज का। मैंने जिन धर्मगुरुओं के प्रवचन सुने थे उनकी परम्परानुगामिनी चेतना भय से आक्रान्त होती थी और उनके व्यक्तित्व में ऐसा भुवनमोहन तेज भी न था। वे स्निग्धभाषी थे, किन्तु उन्हें अपना गुणानुवाद अधिक प्रिय था; वे अज्ञान-तम से आवृत जीवों के उद्धार के लिए उपदेश करते थे, किन्तु अपने निस्तार के लिए ही वे अधिक यत्नवान दीखते थे। इसी कारण आचार्य रजनीश की सद्धर्मदेशना मुझे अधिक हित-विधायक, गम्भीर और, साथ ही साथ, बोधगम्य लगी। हुइ-नेंग् की 'अरूप'-गाथा की निम्नलिखित पंक्तियाँ उनके दर्शन और साधना-तत्त्व का सार प्रस्तुत करती हैं:

(१) 'चाहे हम दस हजार रूपों में इसकी व्याख्या कर लें,

परन्तु इन सब व्याख्याओं का उद्‌गम यह एक मूल सिद्धान्त ही है कि हमें
अपने अंधेरे और अस्थायी घर के अन्दर प्रकाश करना है,
जो मलिनताओं (क्लेशों) के कारण गन्दा है,
हमें सतत रूप से इसमें प्रज्ञा का प्रकाश करना है।' [१]

(२) 'हमारे मन के सार में ही बोधि व्याप्त है,
इसे अलग ढूंढ़ना गलत होगा,
हमारे अपवित्र मन के अन्दर ही
पवित्र पाया जाता है,
और जब एक बार हमारा मन ठीक हुआ तो हम तीनों प्रकार के मोहावरणों
(क्लेश, दुष्कर्म और अधम योनियों में प्रायश्चित्त) से मुक्त हो जाते हैं।' [२]

(३) 'प्रत्येक जीव की मुक्ति का अपना अलग मार्ग है,
इसलिए उन्हें एक दूसरे के मार्ग में
हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए,
और न परस्पर विरोध करना चाहिए;
परन्तु यदि हम स्वयं अपने मार्ग को छोड़ दें
और मुक्ति के किसी
अन्य मार्ग को खोजें,
तो हम इसे नहीं पायेंगे,
मृत्यु-पर्यन्त हम भले ही भटकते रहें,
अन्त में पछतावा ही हमें मिलेगा।' [३]

(४) 'बुद्ध का क्षेत्र इस संसार में ही है,
इसी में हमें बोध को खोजना है;
इस संसार से अपने को अलग कर बोधि को खोजना
उसी प्रकार मुक्तिहीन और हास्यास्पद है

---

१. डॉ० भरतसिंह उपाध्याय, ध्यान-सम्प्रदाय (दिल्ली), पृ० ५२; ड्वाइट गॉडार्ड (सम्पा०),
अ बुद्धिस्ट बाइबल (न्यू यॉर्क, १९५१), पृ० ५२०।
२. अनु० डा. भरतसिंह उपाध्याय।
३. उपरिवत्।

जिस प्रकार एक खरगोश के सींग को खोजना।'[1]

आचार्य रजनीश की दृष्टि में मानवात्मा के लिए समुचित आवास न तो राम की नगरी है और न रावण की। इसी प्रकार जीवन का आधार न तो प्रकृति है और न अतिप्रकृति,[2] न काल और न कालातीत, न स्थूल और न सूक्ष्म। इन विरोधी ध्रुव-युग्मों[3] के किसी एक ध्रुव पर जीवन के सत्य का अधिवास नहीं हो सकता। जब हम सृष्टि के विरोध में स्रष्टा को, पृथ्वी के विरोध में स्वर्ग को, तात्कालिक साध्य के विरोध में जीवन के परम सत्य को खड़ा कर देते हैं तो जीवन एक अमूर्त प्रत्यय-मात्र रह जाता है। ध्यानाचार्यों की तरह आचार्यजी भी कहते हैं कि पवित्रता समग्रता का पर्याय है और, इसलिए, वे न तो जीवन के लिए परमार्थ (परमात्मा) की आवश्यकता का निषेध करते हैं और न परम स्वतंत्रता (शैतान) की आवश्यकता का। वे नहीं चाहते कि हम उन विरोधी युग्मों में किसी एक का सहारा लें जिनके बीचों-बीच मानव-जीवन डोलता रहता है। हमारी बुद्धि इन युग्मों के बीच कोई ऐसे सेतु का निर्माण नहीं कर सकती जिससे इनका पारस्परिक विरोध समाप्त हो जाय। बुद्धि के लिए 'अ' और 'न-अ' का विरोध अशाम्य (irreconcilable) है। इसलिए वह जीवन की चरम अस्तित्वात्मक (existential) समस्याओं का समाधान प्रस्तुत नहीं कर सकती। एक समस्या तो यह है कि हमारा जीवन यथार्थ — अर्थात् पूर्ण — कैसे हो? इसलिए ज़ेन धर्माचार्यों की तरह आचार्य रजनीश भी चाहते हैं कि हम बुद्धि से परे, अपनी अन्तरात्मा के सत्य की ओर लौटें, उस स्वसत्ता की ओर बढ़ें जिसमें इन विरोधों का पृथक्करण नहीं हुआ है।

आचार्यजी के प्रवचनों के श्रवण से किसी में बोधिचित्त का उदय भले ही हो जाय, परन्तु आचार्यजी इस बात पर बल देते हैं कि परमार्थ-सत्य शिक्षकों और धर्मगुरुओं द्वारा संचारित नहीं हो सकता। वस्तुतः परमार्थ-सत्य का ज्ञान

---

१. इसका अँगरेजी पाठ इस प्रकार है:

'This world is the Buddha—world
Within which enlightenment may be sought.
To seek enlightenment by separating from this world
Is as foolish as to search for a rabbit's horn.'

— *A Buddhist Bible*, p. 521.

2. Supernature. 3. Pairs of opposite poles.

न तो बौद्धिक अर्थग्रहण की किसी क्रिया[1] द्वारा उपलब्ध हो सकता है और न अनुभूति की किसी क्रिया द्वारा। इसका ज्ञान किसी भी शक्ति के प्रयोग से नहीं हो सकता। स्मरण रहे कि मनुष्य को अपनी पूर्णता की उपलब्धि किसी आंशिक उत्तर से नहीं हो सकती; हमारी सत्ता के किसी खंड-विशेष से, चाहे वह हमारा हृदय हो या हमारा मस्तिष्क, उद्धार नहीं हो सकता। आचार्य रजनीश के प्रवचन ज़ेन की तरह कोरी भावात्मकता के उतने ही विरोधी हैं जितने बुद्धिवाद के। शब्द के सच्चे अर्थ में आचार्यजी पक्षपातरहित हैं और जानते हैं कि पक्षावलम्बन अंधानुयायी श्रद्धालुओं की विशेषता है। इसलिए वे मानव-सत्ता के किसी खंड-विशेष के हिमायती नहीं हैं, प्रत्युत चाहते हैं कि हम अपनी पूर्णता को उपलब्ध हो जायँ। बुद्धिवादिता और भावुकता, दोनों ही इस पूर्णता को दबा बैठने की सम्भावनाओं से आपूरित हैं।

विश्व के अन्यान्य धर्मों ने भी घोषणा की हैं कि सत्य ही मनुष्य को मुक्त कर सकता है, लेकिन आचार्यजी के लिए यह मुक्तिप्रद सत्य स्वसत्ता का सत्य है और इस कारण ठोस एवं व्यक्तिगत भी। चूँकि यह व्यक्तिगत है, इसलिए इसे किसी ऐसे सूत्र में निबद्ध नहीं किया जा सकता जो अन्य लोगों के लिए भी प्रयोजनीय हो। स्वसत्ता के सत्य को निज की सत्ता में और उसी के माध्यम से समझने का यत्न करना चाहिए। यह एक ऐसा मूर्त सत्य है जिसे बाहर से चिन्तन द्वारा नहीं पकड़ा जा सकता। किसी अन्य के लिए इसकी जानकारी हो, यह असम्भव है; किसी अन्य से इसका वर्णन हो, यह अत्यन्त कष्टसाध्य है। हममें से प्रत्येक को अपने ही द्वारा, अपने ही यत्नों से, इसकी प्राप्ति करनी होगी। 'किसी की बातों से किसी की यात्रा नहीं होती। ...अगर मेरी बातें सुनकर आपकी यात्रा हो सके तो बड़ी आसान बात है, तब तो दुनिया में सबकी यात्रा कभी की हो गई होती। हमने बुद्ध को सुना है, महावीर को सुना है। लेकिन सुनने से कभी किसी की यात्रा नहीं होती।'[2] सत्य की अनुकृति नहीं हो सकती और न कोई अपनी निजी सत्ता की वास्त-

---

१. Any act of intellectual understanding **एक 'बोधि-गीत' में कहा गया है :**

'महान् गजराज खरखोश के संकीर्ण मार्ग पर नहीं चलता,
सम्यक् सम्बोधि बौद्धिकता के संकरे दायरे से बाहर है;
सरकंडे के एक टुकड़े से आकाश को नापना बन्द करो।'

२. **सत्य की खोज, पृष्ठ १२१**

विकता को किसी अन्य व्यक्ति की सत्ता के यथार्थ पर ढाल सकता है। इस सम्बन्ध में आदर्श, परम्परा, धर्मगुरु आदि सब के सब व्यर्थ हो जाते हैं। सत्य की राह स्वयं बनानी पड़ती है। बने-बनाये अथवा घिसे-पिटे मार्ग पर सत्यान्वेषी को चलना नहीं पड़ता। कहा जाता है कि जब शिष्य अपने गुरुओं के शब्द उद्धृत कर उनके द्वारा प्रशंसित होने का प्रयास करते थे तो ध्यानाचार्य अपने डंडे से उनकी मरम्मत तक करने में संकोच न करते। इसका अर्थ यह हुआ कि सत्य का ज्ञान धर्मदेशना से उपलब्ध नहीं होता और न हम किसी पंथ अथवा सम्प्रदाय द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर इसकी प्राप्ति कर सकते हैं। एक ऐसा भी युग था जब लोगों ने ये धर्मदेशनाएँ नहीं सुनी थीं। इसलिए सच पूछिए तो धर्म की शिक्षाएँ, धर्म के उपदेश ऊपर से लादी गई बाहरी चीजें हैं। इन शिक्षाओं और उपदेशों को पकड़ रखना या आत्मसात् कर लेना निरर्थक है। धार्मिक शिक्षाओं को पालन करने की अनवरत चेष्टा ही इस बात का प्रमाण है कि वे हमारे लिए विजातीय हैं। धार्मिक शिक्षाएँ प्रायः सामान्य और अमूर्त हुआ करती हैं, इसलिए आचार्यजी के पास ऐसी शिक्षाओं का न तो कोई भांडार है और न उनके अनुयायियों का कोई विशिष्ट सम्प्रदाय या सिद्धान्त। वे किसी व्यक्ति पर सत्य को आरोपित करना नहीं चाहते और कहते हैं कि आरोपित सत्य आरोपण-मात्र होता है तथा उसमें यथार्थ-अयथार्थ का भेद निरूपित करनेवाली वह क्षमता नहीं होती जो जीवन्त सत्य में होती है। जिस सत्य का आरोपण होता है वह हमारे लिए न तो यथार्थ होता है और न हम उसे अपनी पूर्ण सत्ता से स्वीकार कर पाते हैं।

आचार्यजी चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने जीवन के विकास के लिए पूरी आजादी मिलनी चाहिए। इसलिए जीवन के सत्य को सूत्रबद्ध करना या शास्त्र का रूप दे देना अयुक्त है। सत्य कोई ऐसी चीज नहीं जिसे हम तिजोरी में बन्द कर सकें और आनेवाली पीढ़ियों को उत्तराधिकार के रूप में सौंप सकें। तिजोरी में बन्द होते ही सत्य दम तोड़ देता है और जो शेष बच जाता है वह मौत की दुर्गन्ध होती है। यह सत्य है कि शव-रक्षा की कतिपय प्रविधियाँ उसे अनन्तकाल तक नष्ट होने से बचा सकती हैं, किन्तु 'शव-लेपन' में मुरदे को जिलाने की ताकत नहीं होती। आचार्यजी यह नहीं कहते कि उन्होंने सत्य को अधिकृत कर लिया है, क्योंकि वे जानते हैं कि सत्य पर किसी का अधिकार नहीं हो सकता। जो धर्म सत्य को अधिकृत कर रखने का दावा करे वह न तो धर्म है और न उसका सत्य जीवन का सत्य।

धर्म और विज्ञान के संघर्ष में रूढ़िवादी चाहे तो प्रथम विकल्प का समर्थन करते हैं या उदारमना धर्मशास्त्री दूसरे विकल्प का। इनमें आज के मानव की आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता नहीं होती, क्योंकि इनमें प्रत्येक को जो चीज उपलब्ध हुई रहती है वह दूसरे को मिली हुई नहीं होती। वही धर्म आज के मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है जो जीवन के लिए पूर्ण सहारा बन सके, अड़ान क. काम कर सके और साथ ही साथ परिवर्तन के लिए गुंजाइश रखे। किसी मत-विशेष, किसी सुस्पष्ट एवं सीमांकित शिक्षा-विशेष अथवा किसी सिद्धान्त-विशेष पर आधारित धर्म ऐसा नहीं कर सकता। भिन्न-भिन्न प्रकार के सापेक्ष तत्त्वों (Relatives) से अपबद्ध होने के कारण कोई भी सूत्र अथवा सिद्धान्त पूर्ण रूपेण सार्वभौम नहीं होता। इस कारण समय-समय पर हमारी वर्धमान अनुभूतियों के आलोक में इन सूत्रों का संशोधन भी अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। स्मरण रखना होगा कि हम जिसे जीवन की संज्ञा देते हैं वह अत्यन्त गत्यात्मक है, इसलिए इसके सत्य को सूत्रबद्ध कर लेना सत्य की हत्या करना है। ध्यानाचार्यों की तरह आचार्यजी धर्म के मामले में उदार एवं समचित्त हैं और किसी प्रकार के शब्द तथा सिद्धान्त के जाल में नहीं फँसते। उनके प्रवचन किसी सम्प्रदाय की मान्यताओं का प्रकाशन नहीं करते और न किसी राष्ट्र या जाति-विशेष की सम्पदा हैं। वस्तुतः वे सर्वग्राही हैं और उनका धर्म सार्वलौकिक है—उससे उन सभी लोगों का हित हो सकता है जो जीवन को अखंड बनाने में लगे हैं।

उनका मार्ग सच्चे ध्यान-विद्यार्थी का मार्ग है।

न यश और न लज्जा उनके हृदय को विचलित करते हैं।

वे चित्त के दमन में विश्वास नहीं करते, फिर भी उनका चित्त पाप से निवृत्त है। इस कारण उनके लिए भय का कोई हेतु नहीं है।

'जिसका चित्त स्वायत्त है, उसके सुख की हानि नहीं होती।'

चाहे हम उनकी ताड़ना करें चाहे जुगुप्सा, चाहे उन पर धूल फेंकें चाहे उनके साथ क्रीड़ा करें, वे केवल इतना चाहते हैं कि उनके द्वारा किसी प्राणी का अनर्थ सम्पादित न हो।

उनकी करुणा स्नेह-संवलित है।

उनका चित सुखत्रय (दानप्रीति, परानुग्रहप्रीति, बोधिसंभारसंभरणप्रीति) से आप्यायित है।

वे अपने स्वार्थों को पीछे और परोपकार के आदर्श को आगे रखते हैं।

चूँ कि वे व्यक्तिगत हित की भावना से रहित हैं, इसलिए उनका व्यक्तिगत हित होता है।[1] पूर्ण ज्ञानी वह है जो अपने को पीछे रखता है पर लोगों का अगुआ बनता है।

हम टकटकी लगाकर देखते हैं, पर उन्हें देख नहीं पाते इसलिए हम उन्हें अदृश्य कहते हैं।

हम सुनते हैं, पर उन्हें सुन नहीं पाते; इसलिए उन्हें अश्रव्य कहते हैं।

हम टटोलते हैं, पर उन्हें पकड़ नहीं पाते; इसलिए उन्हें सूक्ष्म कहते हैं।

वे निराकार को आकार प्रदान करते और शून्यता से एक प्रतिमा का निर्माण करते हैं।

हम उनसे मिलते हैं, पर उनके अग्रभाग को देख नहीं पाते; हम उनका अनुसरण करते हैं, पर उनके पृष्ठभाग को देख नहीं पाते[2]

लाओत्से की भाँति वे इस तथ्य से पूर्णतया अभिज्ञ हैं कि —

पंचरंगों से मनुष्य की आँखें अंधी हो जाती हैं।

पंचस्वरों से उसके कान बहरे हो जाते हैं।

पंचरसों से उसकी रुचि शीर्ण हो जाती है।

सरपट चौकड़ी और शिकार से उसका हृदय उन्मत्त हो उठता है।

वे पदार्थ जिन्हें प्राप्त करना कठिन होता है उसके आचरण को उलझा डालते हैं।

इस कारण सन्त नेत्रों को नहीं, पेट की चिन्ता करते हैं:

एक का निषेध और दूसरे का समर्थन करते हैं।[3]

वे युगद्रष्टा हैं, आदर्शवादी नहीं। समाज, धर्म अथवा परम्परा द्वारा निर्धारित आदर्शों का पालन वे नहीं करते, क्योंकि वे जानते हैं कि ऐसे आदर्शों से प्रचालित समाजसेवक समाज के दुखों की ही वृद्धि करते रहे हैं। रजनीश का हृदय करुणा और प्रेम से ओतप्रोत है और उनका लक्ष्य है व्यक्ति का पूर्ण रूपान्तरण — उसके जीवन में आमूल क्रान्ति। फिर भी, उनमें न तो महत्त्वाकांक्षा है और न सफलता की कामना। कृष्णमूर्ति की तरह रजनीश का खयाल है कि सुखी आदमी ही धार्मिक आदमी होता है और उसका जीवन ही समाज-सेवा है। भारत के भिखमंगे तब तक धार्मिक न होंगे जब तक वे सुखी न

---

१. ताओ-तेह्-किंग, अध्याय ७।

२. उपरिवत्, अध्याय १४।

३. उपरिवत्, अध्याय १२।

हों, परन्तु साथ ही स्मरण रहे कि धन-सम्पत्ति के अंबार हमें सच्चा सुख प्रदान नहीं कर सकते। सम्पत्ति का बँटवारा भी नितान्त आवश्यक है और सारे देश, सारी पृथ्वी और सभी जीव-जन्तुओं को सुखी करना है। आचार्यजी बारबार इस बात पर बल देते हैं कि महत्त्वाकांक्षा, चाहे वह पार्थिव हो या आध्यात्मिक, दुखों की जननी है, उससे तरह-तरह के भय उत्पन्न होते हैं। जिसे सरलता ,स्पष्टता ,ऋजुता और बुद्धिमत्ता आदि गुण प्रिय हों, उसे चाहिए कि वह अपने दिमाग से सभी महत्त्वाकांक्षाओं को निकाल फेंके और एक ऐसे परिवेश का निर्माण मेरे जिसमें किसी प्रकार का भय न हो। परम्परा का भय, समाज का भय, पति अथवा पत्नी का भय, पड़ोसियों का भय, मृत्यु का भय, नौकरी जाने का भय — इन सबसे आज का जीवन आक्रान्त है, सब-के-सब किसी-न-किसी भय से भयभीत हैं। इस कारण संसार से मानों बुद्धि का लोप हो चला है। जीवन में सुख की उपलब्धि उन्हें होती है जो एक ऐसे परिवेश में जीवन-यापन करते हैं जिसमें भय की जगह स्वतंत्रता का वातावरण होता है। यह स्वतंत्रता स्वेच्छानुकूल आचरण करने की स्वतंत्रता नहीं होती, अपितु जीवन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझने की स्वतंत्रता होती है।

आचार्य रजनीश जीवन को कुरूप नहीं मानते। इसके असाधारण सौन्दर्य और इसकी गहराइयों का एहसास आपको तभी हो सकता है जब आप धार्मिक संस्थाओं, रूढ़ियों और आज के सड़े-गले समाज के बन्धनों से मुक्त हो जायँ और मनुष्य के रूप में इस बात का पता लगाएँ कि सत्य क्या है। खोजना, पता लगाना ही शिक्षा का लक्ष्य है, न कि अनुकरण करना। समाज, माता-पिता और शिक्षक के आदेशों के अनुसार आचरण करना अत्यन्त सरल है। जीने का इससे आसान तरीका और क्या हो सकता है? परन्तु आचार्यजी के मतानुसार ऐसे जीवन को जीवन नहीं कहते। जीवन तो वह है जिसमें किसी प्रकार का भय न हो, जिसमें ह्रास और मृत्यु का आतंक न व्यापे। जीता वह है जो इस तथ्य क अन्वेषण करता है कि जीवन क्या है और ऐसे अन्वेषण में कोई तभी प्रवृत्त होता है जब उसके जीवन में स्वतंत्रता होती है।

परतंत्रता में बड़ी सुरक्षा है, स्वतंत्रता में बड़ी असुरक्षा।

विचार विद्रोह है और जिसके जीवन में विचार का जन्म हो जाता है वह परतंत्र नहीं रह सकता।

अंधेरे से लड़ना नहीं है, प्रकाश को जलाना है।

जीवन एक सामना है और हम एक साक्षी हैं।

जहाँ शब्द है वहीं दीवार है, जहाँ शून्य है वहीं द्वार है।

जीवन का सत्य भीतर है; स्वयं को जानना सत्य के जानने की दिशा में अनिवार्य चरण है।

सोचने-विचारने का अर्थ है असत्य को असत्य के रूप में देखना-परखना।

सुरक्षित जीवन, सामान्यतः, अनुकृति और भय का जीवन होता है। किन्तु शिक्षा का लक्ष्य प्रत्येक व्यक्ति को निर्भीक बनने और स्वतंत्र रहने में सहायता देना है। भयरहित वातावरण का निर्माण तभी हो सकता है जब हम और हमारे शिक्षक सोचने का व्रत लें और जीवन के सत्य से विमुख न हों। ध्यानाचार्यों की तरह आचार्यजी भी इस तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं कि विरोध के तल पर सत्य और यथार्थ की खोज नहीं की जानी चाहिये। उनकी दृष्टि में धार्मिक जीवन के लिए श्रद्धा-भक्ति, मूर्ति-पूजा आदि निरर्थक हैं। महत्त्व है जीवन के सत्य का, परिपूर्ण सत्य का, न कि जीवन के किसी एक ऐसे पक्ष का जिसे भूल से परम सत्य मान लिया गया हो। ●

अंगरेजी विभाग,
पटना यूनिवर्सिटी, पटना

जब चेतना के पास जानने को कुछ भी शेष नहीं बचता है, तभी वह स्वयं को जान पाती है। ज्ञेय जब कोई भी नहीं है, तभी आत्मज्ञान होता है

एक वार्तालाप

संकलन : नीलरत्न देसाई

(लाओत्से)

ताओ

प्रश्न : मैंने पढ़ा है, लाओत्से ने ताओ फिलासफी पर दो एक बातें कही हैं। ताओ फिलासफी आजतक सही तौर से समझायी नहीं गयी है। या तो विनोबा भावे ने प्रयास किया था या फौरेनर्स ने ट्राई किया था, या हमारे बहुत बड़े विद्वान मनोहरलाल जी ने कोशिश की थी। लेकिन ताओ समझाया नहीं जा सका, या मैं समझ नहीं पाया। कृपया इस पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : ताओ का पहले तो अर्थ समझ लीजिए। ताओ का मूल रूप से यही अर्थ होता है जो धर्म का होता है। धर्म का मतलब है स्वभाव। जैसे आग जलाती है यह उसका धर्म होता है। हवा दिखाई नहीं पड़ती है, अदृश्य है, यह उसका स्वभाव है, यह उसका धर्म हुआ। मनुष्य को छोड़कर सारा जगत धर्म के भीतर है। अपने स्वभाव के बाहर नहीं जाता। मनुष्य को छोड़कर जगत में सभी कुछ स्वभाव के भीतर गति करता है। स्वभाव के बाहर कुछ भी गति नहीं करता। अगर हम मनुष्य को हटा दें तो स्वभाव ही शेष रह जाता है। पानी बरसेगा, धूप पड़ेगी, पानी भाप बनेगा, बादल बनेंगे, ठंडक

होगी, ओले गिरेंगे, आग जलाती रहेगी, हवाएं उड़ती रहेंगी, बीज टूटेंगे, बृक्ष बनेंगे, पक्षी अण्डे देते रहेंगे–सब स्वभाव से होता है। स्वभाव में कहीं कोई विपरीतता पैदा न होगी।

मनुष्य के आने के साथ ही एक अद्भुत घटना जीवन में घटी है। सबसे बड़ी घटना है, जो जगत में घटी और वह यह है कि मनुष्य के पास शक्ति और क्षमता है कि वह स्वभाव के प्रतिकूल जा सके, स्वभाव से उल्टा जा सके। यह मनुष्य की गरिमा भी है, और दुर्भाग्य भी है। यह उसका गौरव भी है। इसीलिए वह श्रेष्टतम प्राणी भी है। इसीलिए वह चाहे तो स्वभाव में जिये और चाहे तो स्वभाव के प्रतिकूल चला जाय। यानी स्वभाव की जो अनिवार्य स्वतंत्रता थी वह मनुष्य पर नहीं है। मनुष्य स्वतंत्र प्राणी है। इस ज्ञात जगत में मनुष्य अकेला स्वतंत्र है। स्वतंत्र का मतलब यह कि वह वह भी कर सकता है जो प्रकृति में नहीं होता। वह आग को ठंडा कर सकता है, हवा को दृश्य बना सकता है, वह पानी को नीचे न बहाकर ऊपर की तरफ बहा सकता है। और इस सबका कारण यह है कि मनुष्य सोच सकता है, क्योंकि उसके पास बुद्धि है। तो बुद्धि निर्णायक है उसकी–क्या करे, क्या न करे। ऐसा करे या वैसा करे, यह करना ठीक होगा कि नहीं ठीक होगा। बुद्धि जो है वह मनुष्य के भीतर स्वतंत्रता का सूत्र है और प्रकृति के ऊपर उठने की सम्भावना है। लेकिन मनुष्य स्वभाव के प्रतिकूल तो जा सकता है लेकिन स्वभाव के प्रतिकूल जाने से जो दुख होते हैं वह उसे झेलने ही पड़ेंगे। तो उसकी स्वतंत्रता, स्वच्छंदता नहीं है। उस पर एक गहरी रुकावट है। स्वतंत्र है वह, कि वह प्रकृति से प्रतिकूल काम करेगा। लेकिन प्रतिकूल काम करने से जो भी परिणाम होंगे वे दुखद होंगे। वह उसे झेलने ही पड़ेंगे। अधर्म का मतलब इतना ही है। अधर्म का मतलब यही है कि जो स्वभाव में नहीं है वैसा करना। जो नहीं करना चाहिए था वैसा करना। जिसे करने से दुख उत्पन्न होता है वैसा करना। जिसे भी करने से दुखद परिणाम आते हैं वह अधर्म है। क्योंकि स्वभाव में दुख की गुंजाइश ही नहीं है। इसलिए मनुष्य को छोड़कर इस जगत में और कोई दुखी भी नहीं हैं, चिंतित भी नहीं है, तनावग्रस्त भी नहीं है। मनुष्य को छोड़कर और कोई प्राणी पागल होने की क्षमता नहीं रखता, विक्षिप्त नहीं होता। क्योंकि वह अपने स्वभाव में ही जीता है। स्वभाव में सुख है, स्वभाव के प्रतिकूल जाने में दुख है। लेकिन और कोई प्राणी जा ही नहीं सकता। स्वभाव में जीना उसका चुनाव नहीं है, स्वभाव में जीना उसकी मजबूरी है।

इसलिए गौरवपूर्ण नहीं है वह बात।

मनुष्य स्वभाव के प्रतिकूल जा सकता है, यह गौरवपूर्ण है। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि इससे सौभाग्य आये। इससे दुर्भाग्य आ सकता है। अगर वह प्रतिकूल जाएगा तो दुख उठायेगा। यही एक बात और समझ लेना जरूरी है। स्वभाव में रहने की अगर मजबूरी हो तो सुख तो होता है, लेकिन आनन्द कभी नहीं होता। मनुष्य के जीवन में एक नया सूत्र खुलता है आनन्द का। आनन्द का मतलब यह है कि स्वभाव के प्रतिकूल जा सकता था और नहीं गया। जाता तो दुख उठाता। अगर जा ही नहीं सकता और स्वभाव में रहता तो सुख पाता। लेकिन जा सकता था, नहीं गया, तब भी सुख उपलब्ध होता है, वह आनन्द है। सुख के साथ स्वतंत्रता जब जुड़ जाती है तो आनन्द बन जाता है। सुख + स्वतंत्रता आनन्द बन जाता है। ताओ का अर्थ है—जैसा सारा जगत जीता है, मजबूरी में, वैसे हम अपनी स्वतंत्रता में जियें। स्वतंत्रतापूर्वक हम अपने स्वभाव में जियें तो ताओ उपलब्ध हो जाता है। ताओ के लिए या तो धर्म शब्द बहुत अद्भुत है। लेकिन धर्म चूंकि हमारे बीच बहुत पिट गया है इसलिए हमारे ख्याल में नहीं पड़ता। और धर्म के हमने बड़े गलत उपयोग किये इसलिए भी कहीं हिन्दू और मुसलमान को धर्म बना दिया, इससे भी कठिनाई हो गई। नहीं तो एक दूसरा वैदिक शब्द है ऋत। ऋत का अर्थ होता है नियम। ताओ का भी मतलब ऋत है, जो नियम है। लेकिन नियम दो तरह से हो सकता है जैसा मैंने कहा, मजबूरी—तब फिर प्रकृति रह जाती है। जहां सब सुखद है लेकिन जहां चुनाव नहीं और नियम को तोड़ने की सम्भावना मनुष्य के साथ शुरू हो जाती है। यानी मनुष्य जो है वह प्रकृति को पार कर गया और परमात्मा में प्रविष्ट नहीं हुआ ऐसा प्राणी है। बस द्वार पर खड़ा है परमात्मा के। चाहे तो प्रवेश करे, चाहे तो लौट जाय। इसकी कोई मजबूरी नहीं है। लौटने से जो दुख होगा वह झेलना पड़ेगा। प्रवेश से जो आनन्द होगा वह मिलेगा। चुनावपूर्वक, स्वतंत्रता-पूर्वक जो व्यक्ति स्वभाव में जीने को राजी हो जाता है वह ताओ को उपलब्ध हो जाता है। इसलिए अब ताओ में कुछ बातें इस आधार पर समझना जरूरी हैं। जैसे स्वभाव में कुछ अच्छा और बुरा नहीं होता, जो होता है, होता है। हम यह नहीं कह सकते कि पानी नीचे की तरफ बहता है तो पाप करता है। हम ऐसा नहीं कह सकते कि पानी नीचे की तरफ बहता ही क्यों है? यह उसका स्वभाव है। इसमें पाप-पुण्य कुछ भी नहीं, अच्छा-बुरा भी कुछ नहीं है।

आग जलाती है तो हम यह नहीं कह सकते कि आग बहुत पाप करती है।

जलने से कोई कितना भी दुख पाता हो लेकिन आग की तरफ से कोई पाप नहीं है, यह उसका स्वभाव है। यह उसकी मजबूरी है। वह आग है इसलिए जलाती है। इसमें आग होना और जलाना एक ही चीज को कहने के दो ढंग हैं। इसलिए प्रकृति में कोई पाप-पुण्य नहीं है। आदमी थोपने की कोशिश करता है। जैसे कि हम शेर को पापी समझते हैं क्योंकि वह गाय को खा जाता है। इसलिए पुण्य-आत्मा लोग ऐसी तस्वीरें बनाते हैं कि गाय और शेर एक ही साथ पानी पी रहे हैं। इसमें गाय के साथ तो बहुत भला हो गया लेकिन शेर का क्या होगा ? इन पुण्यात्माओं ने भी कभी गाय को और घास को एक साथ खड़ा होते नहीं बताया। नहीं तो गाय के साथ भी वही हो जाएगा जो शेर के साथ हो रहा है। क्योंकि घास भी तो मरी जा रही है गाय के साथ। गाय मजे से घास चर रही है और शेर को गाय के बगल में दिखा दिया है। वह गाय को नहीं चर रहा है। हम अपनी धारणाएं थोपते हैं। प्रकृति में न कुछ शुभ है, न अशुभ है। कोई अच्छे और बुरे की बात प्रकृति में नहीं है। क्योंकि वहां विकल्प नहीं है। वहां चुनाव ही नहीं है। ऐसा शेर कोई जान के गाय को नहीं खाता और गाय कोई जानकर घास को नहीं खाती। किसी का किसी को दुख पहुंचाने का कोई इरादा नहीं है। बस, ऐसा होता है।

आदमी के साथ पहली दफा सवाल उठता है, क्या अच्छा और क्या बुरा। क्योंकि आदमी चुन सकता है। ऐसा कुछ भी नहीं है आदमी के साथ जो होता ही है। कुछ भी हो सकता है। अनन्त सम्भावनाएं हैं। आदमी गाय भी खा सकता है, घास भी खा सकता है। घास को भी छोड़ सकता है, गाय को भी छोड़ सकता है। बिना खाये उपवासा भी मर सकता है। आदमी के साथ अनन्त सम्भावनाएं खुल जाती हैं। इसलिए सवाल उठता है कि क्या ठीक और क्या गलत है ?

कहानी है कि कन्फ्यूसस लाओत्से के पास गया और लाओत्से से उसने कहा कि लोगों को बताना पड़ेगा कि क्या ठीक है, क्या गलत है। तो लाओत्से ने कहा यह तभी बताना पड़ता है जब ठीक खो जाता है। कन्फ्यूसस ने कहा कि लोगों को धर्म तो समझाना ही पड़ेगा ? तो लाओत्से ने कहा, तभी समझाना पड़ता है जब धर्म का कुछ पता नहीं चलता कि क्या धर्म है; जब धर्म खो जाता है। आदमी के साथ खो ही गया है। उसके पास कोई साफ सूत्र जन्म के साथ नहीं है जिसपर वह चले। उसे अपने चलने के सूत्र भी खोजने पड़ते हैं जीने के साथ ही साथ। उसकी स्वतंत्रता तो बहुत है लेकिन स्वभाव के प्रतिकूल चले जाने की सम्भावना भी उतनी ही है।

तो हम ऐसा भी कर सकते हैं जो करना हमें दुख में ले जायगा और ऐसा हम रोज कर रहे हैं। ताओ का मतलब है कि फिर उस जगह खड़े हो जाना, उस बिन्दु पर, जहां से चीजें साफ दिखाई पड़नी शुरू हो जाती हैं। जहां हमें तय नहीं करना पड़ता है कि क्या ठीक है और क्या गलत है। बल्कि जहां से हमें दिखाई ही पड़ता है कि यह ठीक है और यह गलत है। जहां हमें विचार नहीं करना पड़ता है, बल्कि दिखाई पड़ता है। तो पहली तो मैंने ताओ की परिभाषा की कि ताओ का मतलब क्या है? अब दूसरी बात मैं कह रहा हूं कि ताओ की साधना क्या है?

ताओ की साधना एक ऐसे बिन्दु पर खड़े हो जाने का उपाय है जहां से हमें दिखाई पड़े कि क्या ठीक है और क्या गलत है। जहां हमें सोचना न पड़े कि क्या ठीक है, क्या गलत है। क्योंकि सोचेगा कौन? सोचूंगा मैं। और अगर मैं सोच ही सकता तब तो कहना ही क्या! मुझे पता नहीं है इसलिए तो मैं सोच रहा हूं। और जो मुझे पता नहीं है उसे मैं सोच के पता लगा नहीं सकता। यानी सोच हम उसी को सकते हैं जो हम जानते ही हैं। अनजान, अननोन को हम सोच नहीं सकते। इतना तो साफ है कि मुझे पता नहीं कि क्या ठीक है क्या गलत है, क्या स्वभाव है क्या विभाव है—मुझे कुछ पता नहीं। अब हम कहते हैं, हम सोचेंगे। जहां से सोचना शुरू होता है वहां से फिलासफी शुरू होती है। इसलिए कहूंगा कि ताओ की कोई फिलासफी नहीं है। जहां से सोचना शुरू होता है कि क्या ठीक है और क्या गलत है, क्या करें क्या न करें, क्या करना पुण्य है, क्या करना पाप है, क्या करेंगे तो सुख होगा, क्या करेंगे तो दुख होगा? जहां यह सोचना है, वहां फिलासफी है। न, ताओ बिल्कुल एन्टीफिलासफी है, वो बिल्कुल अदर्शन है। ताओ यह कह रहा है, सोच के तुम पाओगे कैसे? अगर तुम्हें पता ही होता तो तुम सोचते ही न। और अगर तुम्हें पता नहीं तो तुम सोचोगे कैसे? सोचकर तुम वही जुगाली कर लोगे जो तुम जानते हो। सोचने से नया कभी उपलब्ध नहीं होता, न कभी उपलब्ध हुआ है, न हो सकता है। सोचने से सिर्फ पुराने के नये संयोग बनते हैं। कभी कोई नया उपलब्ध नहीं हो सकता। चाहे विज्ञान की कोई नयी प्रतीति हो, चाहे धर्म की कोई नयी अनुभूति हो। सब सोचने के बाहर घटती हैं। सोचने के भीतर नहीं घटती हैं। विज्ञान की भी नहीं घटती। जब भी कुछ नया आता है वह तब आता है जब आप सोचने के बाहर होते हैं। भले यह हो सकता है कि आप सोच सोच के थक के बाहर हो जायं। यह हो सकता है कि एक आदमी अपनी प्रयोग-

शाला में सोच सोच के थक गया है और दिन भर सब तरह के प्रयोग किये हैं और कोई फल नहीं पाया। थक गया, थक गया। वह रात सो गया है और अचानक उसे सपने में ख्याल आ गया या सुबह उठा और उसे ख्याल आया है, तो वह यही कहेगा कि मने तो जो सोचा था उससे ही यह आया है। यह उससे नहीं आया। यह तो जब सोचना थक गया था, ठहर गया था, तब वह ताओ में पहुंच गया। जब कोई सोचने से छूट जाता है तत्काल स्वभाव में आ जाता है। क्योंकि और कहीं जाने का उपाय नहीं है। विचार एकमात्र व्यवस्था है, जिसमें हम स्वभाव के बाहर चले जाते हैं। जैसे मैं इस कमरे में सो जाऊं और रात सपना देखूं। मैं इस कमरे के बाहर जा सकता हूं सपने में। लेकिन सपना टूट जाय तो मैं इसी कमरे में खड़ा हो जाऊंगा। फिर मैं यह नहीं पूछूंगा कि इस कमरे में आया कैसे? क्योंकि मैं तो सपने में बाहर चला गया था। तब मैं तत्काल जानूंगा कि सपने में बाहर गया था। मैं बाहर गया नहीं था, सिर्फ ख्याल था मुझे कि मैं बाहर गया हूं। था मैं यहीं। जब मैं बाहर गया था ऐसा देख रहा था, तब भी मैं यहीं था। तो ताओ यह कहता है कि तुम कितने ही सोच रहे हो कि यहां चले गये, वहां चले गये, तुम ताओ से जा नहीं सकते। रहोगे तो तुम वहीं, क्योंकि स्वभाव के बाहर जाओगे कैसे? स्वभाव का मतलब यह है कि जिसके बाहर न जा सकोगे। जो तुम्हारा होना है, जो तुम्हारा बीइंग है उससे बाहर जाओगे कैसे? लेकिन सोच सकते हो बाहर जाने के लिये।

इसलिए दूसरी बात ख्याल में ले लेने जैसी है कि मनुष्य की जो स्वतंत्रता है वह भी सोचने की स्वतंत्रता है। सोचने में वह बाहर चला गया है। विचार में वह भटक रहा है। अगर सारा विचार ठहर जाय तो वह ताओ पर खड़ा हो जायगा। जिसको हम ध्यान कहते हैं, या जिसको जापानी लोग ज़ेन कहते हैं उसको लाओत्से ताओ कहता है। उस जगह खड़े हो जाना है जहां कोई विचार नहीं है। वहां से तुम्हें वह दिखाई पड़ेगा जो है, जैसा होना चाहिए। जैसा होना सुख देगा, आनन्द देगा वह दिखाई पड़ेगा। और यह अब चुनना नहीं पड़ेगा कि इसको मैं करूंगा तो यह होना शुरू हो जाएगा। तो ताओ की स्थिति को जहां कि पशु हैं ही, जहां पौधे हैं ही, जहां हम भी हैं। लेकिन हम विचार में बदल जाते हैं और ताओ, हमारी वास्तविक स्थिति का पता नहीं और सब कुछ हमें पता होगा। ताओ की जो मौलिक प्रक्रिया है साधना, वह तो ध्यान ही है। वहां आ जाना है जहां कोई सोच-विचार नहीं है। लाओत्से कहता है—तुमने सोचा, रत्ती भर विचार, और स्वर्ग और नर्क अलग, इतना बड़ा फासला हो जाएगा। लाओ-

त्से के पास कोई आया है और उससे कुछ पूछता है। वह उसे जवाब देता है। और जब वह जवाब देता है तब वह आदमी सोचने लगता है। लाओत्से कहता है कि बस सोचना मत। क्योंकि सोचा तो जो मैंने कहा उसे तुम कभी न समझ पाओगे। सोचना मत, जो मैंने कहा उसे सुनो, सोचो मत। अगर सुन सके तो बात हो जाएगी। अगर सोचा, तो गये! सोचना ही था तो मुझसे पूछा क्यों? तुम्हीं सोच लेते। कौन तुम्हें मना करता? सोचते ही हम, तत्काल स्वभाव के बाहर हो जाते हैं। इसलिए विचार जो है वह स्वभाव के बाहर छलांग है; लेकिन विचार में ही! इसलिये मूलतः हम कहीं नहीं गये होते। गये हुए मालूम पड़ते हैं। ताओ की साधना का अर्थ हुआ--सोच विचार छोड़कर खड़े हो जाना। जहां कोई विचार न हो, सिर्फ चेतना रह जाय, सिर्फ होश रह जाय तो वहां से जो ठीक है वह न केवल दिखाई पड़ेगा बल्कि होना शुरू हो जाएगा। इसलिए ताओ को जीनेवाला आदमी न नैतिक होता है न अनैतिक होता है, न पापी होता है न पुण्यात्मा होता है। क्योंकि वह कहता है कि जो हो सकता है वही हो रहा है, मैं कुछ करता नहीं।

एक ताओ फकीर से जाकर कोई पूछता है कि आपकी साधना क्या है? तो वह कहता है कि जब मेरी नींद टूटती है मैं उठ जाता हूं। अगर नींद आ जाती है तो मैं सो जाता हूं। और जब भूख लगती है तो खाना खा लेता हूं। वह कहता है--यह तो हम सभी करते हैं। फकीर कहता है कि यह तुम सभी नहीं करते। जब नींद आयी, तब तुम कब सोये? तुमने और हजार काम किये। और जब नींद नहीं आयी थी तब तुमने नींद लाने की कोशिश की थी। और तुम कब उठे जब नींद टूटी हो! या नींद तोड़कर उठ आये हो। या नींद टूट गई हो और तुम नहीं उठे हो! तुमने कब खाना खाया, जब भूख लगी हो?

एक एस्कीमो, साइबेरिया का पहली दफा इंग्लैंड आया। वह बहुत हैरान हुआ। सबसे बड़ी हैरानी उसको यह हुई कि लोग घड़ी देखकर कैसे सो जाते हैं! और लोग घड़ी देखकर कैसे खा लेते हैं! जिस घर में वह मेहमान था वह इतना परेशान हुआ कि सारे लोग एक साथ खाना कैसे खा लेते हैं! क्योंकि यह हो नहीं सकता कि सबको एक साथ भूख लगती हो। क्योंकि हमारे यहां जिसको भूख लगती है वह खाता है। किसी को कभी लगती है किसी को कभी लगती है। यह बड़ा मिरेकल है उसके लिए। घर भर के एक साथ टेबल पर बैठकर खाना खाते हैं। क्योंकि सब लोगों के एक साथ भूख लगना बड़ी असम्भव घटना है। और लोग कहते हैं कि बारह बज गये और सो जाते हैं। यह बिलकुल समझ के

बाहर पड़ा उसके, स्वाभाविक है। क्योंकि साइबेरिया से आनेवाला आदमी अभी भी ताओ के ज्यादा करीब है। अभी भी जब भूख लगती है तब खाता है, नहीं लगती है तो नहीं खाता है। जब नींद आती है तो सोता है, जब नींद टूटती है तो उठता है। ब्राह्म मुहूर्त में उठना चाहिए, ऐसा ताओ नहीं कहेगा। ताओ कहेगा, जब तुम उठ जाते हो वही ब्राह्म मुहूर्त है। तो वह फकीर ठीक कह रहा है कि जो होता है वह हम होने देते हैं। हम कुछ भी नहीं करते।

मनुष्य एक बार भी फिर से अगर प्रकृति की तरह जीने लगे तो ताओ को उपलब्ध होता है। जब उसे जो होता है, होने देता है। और यह बहुत गहरे तल तक है। यह खाने और पीने की बात ही नहीं है। अगर उसको क्रोध आता है तो वह क्रोध को भी आने देता है। अगर उसको काम उठता है तो वह काम को भी उठने देता है। क्योंकि वह कहता है कि मैं कौन हूं? जब उठना है उसे, उठे। असल में जो होता है, ताओ कहता है, उसे होने देना है। तुम कौन हो जो बीच में आते हो। अगर कोई व्यक्ति सब होने दे जो होता है, तो साक्षी ही रह जाएगा। और तो कुछ बचेगा नहीं। देखेगा कि क्रोध आया, देखेगा कि भूख आयी, देखेगा कि नींद आयी। वह साक्षी हो जाएगा। तो ताओ की जो गहरी से गहरी पकड़ है वह साक्षी में है। वह देखता रहेगा। एक दिन वह यह भी देखेगा कि मौत आयी और देखता रहेगा—क्योंकि जिसने सब देखा हो जीवन में, तो वह फिर मौत को भी देख पाता है। क्योंकि हम जीवन को नहीं देख पाते हैं। हम सदा बीच में आ जाते हैं तो मौत के वक्त भी हम बीच में आ जाते हैं और नहीं देख पाते हैं कि क्या हो रहा है। वह मौत को भी देखेगा, जिसने नींद को आते देखा और जाते देखा। जिसने बीमारी को आते देखा और जाते देखा, क्रोध को आते देखा और जाते देखा वह एक दिन मौत को भी आते देखेगा। वह जन्म को भी आते देखेगा। वह सबका देखने वाला हो जायगा। और जिस दिन हम सबके देखने वाले हो जाते हैं उसी क्षण हम पर कर्म का कोई बन्धन नहीं रह जाता। क्योंकि कर्म का सारा बन्धन हमारे कर्ता होने में है कि मैं कर रहा हूं—चाहे क्रोध कर रहा हूं, चाहे ब्रह्मचर्य साधा रहा हूं; लेकिन मैं करने वाला हूं। चाहे पूजा कर रहा हूं, चाहे भोजन कर रहा हूं, मैं करनेवाला मौजूद है। तो ताओ की जो अंतिम घटना है उसमें मैं तो खो जाएगा, कर्ता खो जाएगा; साक्षी रह जाएगा। हम इसमें कुछ भी करनेवाले नहीं हैं डूअर जो है वह अब नहीं है ऐसी जो चेतना की अवस्था है, जहां न कोई शुभ है न कोई अशुभ है; न अच्छा है, न बुरा है। जहां

सिर्फ स्वभाव है और स्वभाव के साथ पूरे भाव से रहने का राजीपन है। जहां कोई संघर्ष नहीं, जहां कोई झगड़ा नहीं, ऐसा हो वैसा हो, ऐसा कोई विकल्प नहीं। जो होता है उसे होने देने की तैयारी है। तो विस्फोट, एक्सप्लोजन जिसको मैं कहता हूं, वह तत्काल घटित हो जाएगा। और इसलिए ताओ जैसे छोटे शब्द में सब आ गया है। सब जो भी श्रेष्ठतम है साधना में, और जो भी महानतम है मनुष्य की अध्यात्म की खोज में, ध्यान में, समाधि में जो भी पाया गया है वह सब इस छोटे से शब्द में समाया हुआ है। यह शब्द बहुत कीमती है। इसलिए अनट्रांसलेटेबल है। इसलिए ताओ का अनुवाद नहीं हो सकता। धर्म से हो सकता था। लेकिन धर्म विकृत हुआ है। उसके एसोसिएशन्स गलत हो गये हैं। ऋत से हो सकता था लेकिन वह अव्यवहृत है। वह कभी प्रयोग नहीं हुआ। वह व्यापक मन तक गया नहीं। लेकिन अर्थ वही है। मूल स्वभाव में जीने की सामर्थ्य सबसे बड़ी सामर्थ्य है। क्योंकि तब न निन्दा का उपाय है, न प्रशंसा का उपाय है। तब कोई उपाय ही नहीं है।

लाओत्से के पास सम्राट ने किसी को भेजा है कि लाओत्से को बुला लाओ। सुनते हैं बहुत बुद्धिमान आदमी है। उसे अपना वजीर बना लें। वह आदमी गया है। बमुश्किल से लाओत्से को खोज पाया। क्योंकि जहां लोगों से पूछा उन्होंने कहा कि लाओ त्से को खुद ही पता नहीं होता है कि कहां जा रहा है। जहां पैर ले जाते हैं चला जाता है। पहले से वह खुद भी बता नहीं सकता कि कहां जाएगा। यह बताना मुश्किल है। उसे खोजें। कहीं न कहीं होगा। क्योंकि सुबह यहां दिखाई पड़ा है। इस गांव में था। कोई बहुत दूर नहीं निकल गया होगा। दूर इसलिए भी नहीं निकल गया होगा, कि तेजी से वह चलता ही नहीं था। जब कहीं जाना ही नहीं है, कहीं पहुंचना ही नहीं है तो कहीं दूर नहीं होगा। वह मिलेगा। आसपास खोजा है तो एक नदी के किनारे बैठा हुआ है। उस आदमी ने जाकर कहा कि हम बड़ी मुश्किल से खोजते आये हैं तुम्हें। सम्राट ने बुलाया है। कहा है कि वजीर का पद लाओत्से संभाल ले। तो लाओत्से चुपचाप बैठा रहा था। फिर उसने कहा, देखते हो उस कछुए को! एक कछुआ वहां कीचड़ में मजा कर रहा है। फिर उसने कहा कि हमने सुना है कि तुम्हारे सम्राट के घर एक सोने का कछुआ है। उसकी पूजा होती है। कभी कोई कछुआ कई पीढ़ी पहले किसी कारणवश उस परिवार में पूज्य हो गया था। तो उसको सोने की खोल चढ़ाकर बहुत आदर से रखा गया। क्या यह सच है? तब आदमी ने कहा, हां सच है। सोने की खोल

में मढ़ा हुआ वह कछुआ परम आदरणीय है। सम्राट स्वयं उसके सामने सिर झुकाता है। लाओत्से ने कहा—बस मैं तुमसे यह पूछता हूं कि अगर तुम इस कछुए से कहो कि हम तुम्हें सोने से मढ़ दें, और सुन्दर बहुमूल्य पेटी में बन्द करके पूजा करेंगे, जो यह कछुआ सोने से मढ़ जाना पसन्द करेगा कि यह कीचड़ में लोटना पसन्द करेगा ? तब आदमी ने कहा, कछुआ तो कीचड़ में लोटना ही पसन्द करेगा। तो लाओत्से ने कहा, हम भी पसन्द यही करेंगे। नमस्कार ! तुम जाओ। जब कछुआ तक इतना बुद्धिमान है तो तुम लाओत्से को ज्यादा बुद्धि-हीन समझे हो कछुए से ? राजा का वजीर होना हमारे काम का नहीं। असल में लाओत्से ने कुछ भी होना बन्द कर दिया है। लाओत्से जो है, वह है।

यह जो आदमी है वह साधारणतः जिसको हम साधक कहते हैं वैसा आदमी नहीं है। हम जिसे साधक कहते हैं वह आमतौर से जिसे हम साधारण आदमी कहते हैं उससे विपरीत होता है। अगर यह आदमी दुकान करता है, तो वह आदमी दुकान नहीं करता है। अगर यह आदमी धन कमाता है, तो वह आदमी धन छोड़ देता है। अगर यह आदमी विवाह करता है, तो वह आदमी विवाह नहीं करता है। लेकिन उसके करने का जितना भी नियम है वह इसी रास्ते से मिलता है। वह सिर्फ इसका रिऐक्शन होता है। लाओत्से कहता है — हम किसी के रिऐक्शन नहीं हैं, हम किसी की प्रतिक्रिया नहीं हैं। कौन क्या करता है इससे प्रयोजन नहीं है। न हम किसी के पीछे जाते हैं कि ऐसा करें, जैसा वह करता है। न हम किसी के प्रतिकूल जाते हैं कि ऐसा करें, जैसा वह नहीं करता है। हम तो वही होने देते हैं जो हमारे भीतर से होता है। स्वभाव को होने देने का मतलब यह है कि हम किसी का अनुकरण न करें। किसी की नकल न करें। किसी के विरोध में आयोजन न करें अपने व्यक्तित्व का। जो हो सकता है भीतर से, जो होना चाहता है वह हम होने देंगे, उसपर कहीं कोई रुकावट न हो। कोई निन्दा न हो, कोई विरोध न हो, कोई संघर्ष न हो, कोई द्वन्द्व न हो। जो होता है उसे होने दें। तब उसका मतलब यह है कि बुरे-भले का ख्याल तत्काल छोड़ देना पड़ेगा। क्योंकि बुरा-भला ही हमें निन्दा करवाता है। रुकवाता है। यह करो और यह मत करो। यह सारे बुरे-भले का, शुभ-अशुभ का ख्याल छोड़कर और उस बिन्दु पर हमें खड़े होकर देखना पड़ेगा कि जीवन अब वहां जाय — जिस बिन्दु पर कोई विचार नहीं है। अगर आपके मस्तिष्क से सोचने की सारी शक्ति छीन ली जाय फिर भी आप सांस लेंगे। अभी भी सांस ले रहे हैं। लेकिन सांस तक के लेने में फर्क पड़ जाएगा। रात को आप दूसरी तरह से सांस लेते हो दिन की

बजाय। सांस पर हम आमतौर से कोई ख्याल नहीं करते हैं। लेकिन फिर भी हमारे विचार की प्रक्रिया सांस पर कई तरह की बाधा डालती रहती है। रात में हम दूसरी तरह की सांस लेते हैं। अगर कोई बीमार रात सोना बंद कर दे तो उसकी बीमारी ठीक होना मुश्किल हो जाती है। क्योंकि जागते में बीमारी का ख्याल बीमारी को बढ़ावा देने लगता है। तो जरूरी होता है कि कोई बीमार हो तो पहले उसे नींद आये। इलाज तो नम्बर दो की बात है। क्योंकि नींद में वह बीमारी का ख्याल छोड़ पाये और उसका स्वभाव जो वह कर सकता है, कर सके। यह आदमी बाधा न दे। इसलिए बच्चे हमें इतने प्रीतिकर लगते हैं। यह बहुत मजे की बात है कि आमतौर से कुरूप बच्चा खोजना बहुत मुश्किल है। सभी बच्चे सुन्दर होते हैं। असल में बच्चा कुरूप होता ही नहीं है। यह कभी ख्याल में नहीं आया होगा किसी बच्चे को देखकर कि वह कुरूप है। लेकिन ये ही बच्चे बड़े होकर बहुत से लोग कुरूप हो जाते हैं। अधिक लोग कुरूप हो जाते हैं। सुन्दर आदमी खोजना मुश्किल हो जाता है। बात क्या है? यह बच्चे का सौन्दर्य कहां से आता है—ताओ से। वह वैसे ही जी रहा है, जैसे है। यानी बड़ी से बड़ी जो कुरूपता है, बड़ी से बड़ी अग्लीनेस जो है वह सुन्दर होने की चेष्टा से पैदा होती है। तब जो हम हैं वह नहीं रह जाता है महत्वपूर्ण। जो दिखना चाहिए उसको हम खोजना शुरू कर देते हैं। इसलिए स्त्रियां मुश्किल से सुन्दर हो पाती हैं। सुन्दर होने का जो अति विचार है वह बहुत गहरी और छिपी कुरूपता भीतर भरता है। बहुत कम स्त्रियां हैं जिनमें कोई गहराई होती है सौन्दर्य की। इसलिए कुछ दिनों के लिये एक स्त्री आपके साथ रह जाय और वह कितनी ही सुन्दर हो, दो दिन के बाद उसका सौन्दर्य दिखाई पड़ना बन्द हो जाएगा। क्योंकि सौंदर्य सरफैस्ड है, बहुत ऊपर है। वह गहरा दिखाई नहीं पड़ता। बच्चे सभी सुन्दर मालूम होते हैं, जो कि हैं; जैसे हैं, वैसे हैं। कुरूप हैं तो कुरूप होने को भी वह राजी हैं। उसमें भी कोई बाधा नहीं है। और तब एक और तरह का सौन्दर्य उनमें प्रकट होता है। जिसको ताओ का सौन्दर्य कहते हैं। इसी तरह जीवन के सारे पहलुओं पर, एक बहुत बुद्धिमान आदमी, जो सब प्रश्नों का उत्तर जानता है, लेकिन जरूर ऐसे प्रश्न होंगे जिसका उत्तर उसे पता नहीं—जब उसके जाने हुए प्रश्न आप पूछते हैं तबतक वह उत्तर देगा। और एक प्रश्न आप ऐसा खड़ा कर देंगे जो उसे पता नहीं, तो वह तत्काल अज्ञानी हो जाता है। क्योंकि जो बुद्धिमत्ता थी वह साधी गई थी। इसलिए बुद्धिमान आदमी नये प्रश्नों को स्वीकार नहीं

करना चाहता। नये सवाल उठाना नहीं चाहता और वह कहता है पुराने सवाल ठीक हैं। इसलिए वह कहता है पुराने जवाब ठीक हैं। क्योंकि पुराने जवाब तभी तक ठीक हैं जब तक नया सवाल नहीं उठता है। नया सवाल उठता है तो बुद्धिमान आदमी गया। नहीं, लेकिन ताओ के पास कोई जवाब नहीं है। इसलिए ताओ की बुद्धिमत्ता जिसको उपलब्ध हो जाय उसके लिए कोई सवाल न नया है न पुराना है। इधर सवाल खड़ा होता है उधर वह उस सवाल से जूझ जाता है। उसके पास कुछ तैयार नहीं है। कन्फ्यूसस जब लाओत्से से मिला है तो, कन्फ्यूसस बहुत से लोगों से मिलने गया था। लौटकर उसके मित्रों ने पूछा कि क्या हुआ? तो उसने कहा कि आदमी की जगह तुमने मुझे अजगर के पास भेज दिया। वह आदमी ही नहीं है। वह तो खा जाएगा। मेरी सारी बुद्धिमत्ता चकनाचूर हो गई। बल्कि उस आदमी के सामने मुझे पता चला कि मेरी बुद्धिमत्ता इस तरह की तो नहीं है, बल्कि कुछ नहीं है। सिर्फ एक चालाकी है। जैसे मैंने कुछ सवालों के जवाब तय कर रखे हैं, जिनका मैं जवाब दे देता हूं। लेकिन उस आदमी ने ऐसे सवाल पूछे जिनका जवाब मुझे पता नहीं था। और मुझे यह भी पता नहीं था कि यह भी सवाल है। और तब वह बहुत हंसने लगा। अब उस आदमी के सामने मैं दोबारा नहीं जा सकूंगा। क्योंकि उस आदमी के पास मेरी सारी बुद्धिमत्ता चालाकी से ज्यादा साबित नहीं हुई, जो मैंने तैयार कर रखी थी।

ताओ की अपनी एक बुद्धिमत्ता है। जिस बुद्धिमत्ता में कुछ तैयार नहीं है। चीजें आती हैं और स्वीकार कर ली जाती हैं। और जो भी होता है उसे होने दिया जाता है। इसलिए ताओ का व्यवहार तय करना बहुत कठिन है। हो सकता है कि आप किसी ताओ में स्थिर आदमी से कोई सवाल पूछें और वह जवाब न दे और आपको चांटा मार दे। क्योंकि वह यह कहेगा कि यही हुआ। वह यह भी नहीं कहता है कि आप न मारो। आप जवाब में मार सकते हैं। तब जो करना है कर सकते हैं। लेकिन वह यह कहेगा कि जो हो सकता था वह हुआ। और अगर उसके चांटे को समझा जाय तो शायद आपके लिए वही जवाब था। सभी प्रश्न ऐसे नहीं कि उनके उत्तर दिये जायं। बहुत प्रश्न ऐसे हैं जिनका चांटा ही अच्छा उत्तर होगा। हमारे ख्याल में नहीं आयेगा एक दम से कि चांटा कैसे अच्छा है!

एक ताओ फकीर के पास एक युवक पूछने गया है। वह उससे पूछता है कि ईश्वर क्या है, धर्म क्या है? तो वह फकीर उठा है और एक चांटा लगाता है, दरवाजा बन्द करके उसे बाहर कर देता है। युवक बहुत परेशान हो गया। वह बहुत दूर से पहाड़ चढ़ करके उसके पास आया है। सामने दूसरे फकीर का

झोपड़ा है। वह उसमें जाता है और कहता है, किस तरह का आदमी है यह। तब वह फकीर डंडा उठाता है। युवक कहता है कि यह आप क्या कर रहे हैं? उसने कहा कि तू बहुत दयालु आदमी के पास गया था, अगर हमारे पास तू आता तो हम डंडा ही मारते। वह आदमी सदा का दयालु है। तू वापस वहीं जा। उसकी बड़ी करुणा है। उसने इतना भी किया जो कुछ कम नहीं है। वह आदमी वापस लौटता है। और कुछ समझ नहीं पाता है कि क्या मामला है। दरवाजा खटखटाता है। वह फ़कीर उसे भीतर बुलाकर बड़े प्रेम से बिठा लेता है। और कहता है, पूछ। तब वह युवक कहता है कि अभी मैं आया था तो आपने मुझे मारा और अब आप इतने प्रेम से बिठा रहे हैं। तब फकीर कहता है कि जो मार नहीं सह सकता है वह प्रेम तो सह ही न सकेगा। क्योंकि प्रेम की मार तो बहुत कठिन है। मगर तू लौट आया। तब आगे बात चल सकती है। उसने कहा, मैं तो डर के भाग भी जा सकता था। यह तो सामने वाले की करुणा है। क्योंकि उसने कहा कि बड़ा कृपालु है। वह मुझसे ज्यादा कृपालु है। अगर तू उसके पास गया होता तो वह डंडा ही मारता।

अब यह जो बात सारे जगत में पहुंची तो समझना बहुत मुश्किल हो गया कि सारा मामला क्या है। लेकिन चीजों के अपने आन्तरिक नियम हैं। आन्तरिक ताओ है चीजों का। अब यह जरूरी नहीं कि आप जब मुझसे प्रश्न पूछने आयें तो सचमुच प्रश्न ही पूछने आयें। और यह भी जरूरी नहीं है कि आपको उत्तर की ही जरूरत है। और यह भी जरूरी नहीं है कि जो आपने पूछा है वही आप पूछने आये थे। और यह भी जरूरी नहीं है कि जो आपने पूछा है यह आप पूछना ही चाहते हैं। क्योंकि आपके पास भी बहुत चेहरे हैं। आप कुछ पूछना तय करके चलते हैं। कुछ रास्ते में हो जाता है। कुछ आप आकर पूछते हैं। अब मेरे पास कई लोग आते हैं। अगर मैं उनका दो मिनट प्रश्न छोड़ जाऊं और दूसरी बात करूं, फिर दोबारा वे घण्टे भर बैठे रहेंगे और वे कभी नहीं पूछेंगे। फिर जो आदमी एक प्रश्न पूछने आया था मैंने उससे पूछा कैसे हो, ठीक हो! बस उसका प्रश्न गया। तो उसका यह प्रश्न कितना गहरा हो सकता है! इसके कितने रूट्स हो सकते हैं। इस आदमी के व्यक्तित्व को कितनी इसकी जरूरत हो सकती है! लेकिन आया यह ऐसे ही था जैसे कि बहुत जरूरी था इसका पूछना। जैसे इसके बिना पूछे ये जी न सकेगा। तो ताओ की अपनी एक बुद्धिमत्ता है, जो सीधा, डाइरेक्ट ऐक्शन में है। और कुछ कहा नहीं जा सकता है कि ताओ में फिर आदमी क्या करेगा। हो सकता है चुप रह जाय।

लाओत्से घूमने जाता है। मित्र साथ है। वे दो घण्टे घूमते हैं पहाड़ों पर, फिर लौट आते हैं। फिर एक मेहमान आया हुआ है। वह मित्र उसको लाता है और कहता है कि यह हमारा मेहमान है। आज ये भी चलेंगे। वे दोनों चुप खड़े हैं। लाओत्से चुप है। साथी चुप है। वह मेहमान भी चुप है। रास्ते में सूरज उगा तब इतना ही कहता है मेहमान, कि कितनी अच्छी सुबह है। तब लाओत्से बहुत गुस्से से उस अपने मित्र की तरफ देखता है जो इस मेहमान को ले आया था। वह मित्र घबड़ा जाता है और मेहमान तो और भी घबड़ा जाता है कि ऐसी तो मैंने कोई बुरी बात ही नहीं कही है और घण्टा भर हो गया चुप रहते। मैंने कहा कि कितनी अच्छी सुबह है। फिर वे लौट आते हैं। घण्टा और बीत जाता है। दरवाजे पर लाओत्से उस मित्र से कहता है कि इस आदमी को दोबारा मत लाना। यह बहुत बकवासी मालूम होता है। मेहमान कहता है कि मैंने तो कोई बकवास नहीं की। सिर्फ इतना ही कहा कि कितनी अच्छी सुबह है। लाओ-त्से कहता है, सुबह हमको भी दिखाई पड़ रही है। यह निपट बकवास है। जो बात सबको दिखाई पड़ रही हो उसको कहने की क्या जरूरत है? और जो बात नहीं कहनी तुम वह कह सकते हो। तुम आदमी ठीक नहीं हो। कल से मत आना।

अब यह बात जरा सोचने जैसी है। असल में जब आप सुबह देखकर कहते हैं कितनी अच्छी सुबह है तब सच में आपको सुबह से कोई मतलब नहीं होता है। आप सिर्फ एक चर्चा शुरू करना चाहते हैं। सुबह तो हम सबको दिखाई पड़ रही है। सुबह सुन्दर है, तो चुप रहिए। नहीं, सिर्फ आदमी खूंटी खोजता है। तो लाओत्सो पूरी तरह पकड़ लेता है। वह कहता है यह आदमी बकवासी है। इसने शुरूआत की। वह तो हम जरा ठीक आदमी नहीं थे नहीं तो शुरू हो गया होता। इसने ट्रेन तो चला दी। यह तो दो आदमियों ने सहयोग नहीं दिया इसलिए यह बेचारा चुप हो गया। इसने खूंटी गाड़ दी थी। यह और सामान भी टांगता खूंटी के साथ। अब यह इतनी सी बात कि सुबह सुन्दर है, एक बकवासी के चित्त का सबूत हो सकता है। इससे ज्यादा उसने कुछ कहा ही नहीं है। हमें लगता है कि लाओत्से ज्यादती कर रहा है। लेकिन मुझे नहीं लगता। वह ठीक ही कहता है। क्योंकि ताओ जो है उसकी अपनी बुद्धिमत्ता है। वह दर्पण की तरह है। उसे चीजें जैसी हैं वैसी दिख जाती हैं। तो उसने पकड़ा इस आदमी को कि यह घण्टे भर से बेचैन था। इसने कई तरकीबें लगाईं, लेकिन दो आदमी बिल्कुल चुप थे। लाओत्से ने कहा, यह आदमी

बिल्कुल बकवासी है। इसको कल से लाना मत। इसने बीज तो बो दिया था। फसल तो हमने बचायी थी।

तो ताओ का एक अपना दर्पण है जिसमें चीजें कैसी दिखाई पड़ेंगी, यह सीधी चीजों को देखकर हम नहीं जानते। और चूंकि उसके पास अपना कोई बंधा हुआ उत्तर नहीं है इसलिए बड़ी मुक्ति है। चूंकि कोई रेडीमेड बात नहीं है, इसलिए चीजें सरल और सीधी हैं। और जाल कुछ भी नहीं है, लेकिन यह स्थिति पर खड़े होने की सारी बात है। जिसे मैं ध्यान कह रहा हूं उसको ताओ कहें तो कोई फर्क नहीं पड़ता। ताओ से मेरे बड़े लेन-देन हैं। और किसी भी व्यक्ति के निकट अपने को मालूम करता हूं तो वह लाओत्से के। वह शुद्धतम है। उसने कभी जिन्दगी में किताब नहीं लिखी। कितने लोगों ने कहा कि लिखो, लिखो। फिर आखिरी वक्त में वह देश छोड़कर जा रहा था। तब उसे चौकी पर पकड़वा लिया राजा ने और उसको कहा कि कर्ज चुका जाओ। ऐसे नहीं जाना है। उसने कहा, चुंगी भरने के लिए तो मेरे पास कुछ है ही नहीं। टैक्स मैं किस बात का दूं। तो जो टैक्स कलेक्टर है उसने कहा, तुम्हारे सिर में जो है वह लिख जाओ, ऐसे हम तुम्हें जाने नहीं देंगे।। तुम्हारे पास बहुत सम्पदा है और तुम भागे जा रहे हो। तब उसने एक छोटी सी किताब लिखी है—एताओ तेइंग। यह अद्भुत किताब है। क्योंकि कम ही ऐसे लोग हैं जो लिखते वक्त यह कहें कि जो मैं कहने जा रहा हूं वह कहा नहीं जा सकेगा और जो मैं कहूंगा वह सत्य हो ही नहीं सकता। क्योंकि कहते ही असत्य हो जाएगा। जो मैं कहूंगा असत्य हो जाएगा। क्योंकि कहते ही चीजें असत्य हो जाती हैं।

इस आदमी के पास कुछ है और इस आदमी ने कुछ जाना है और यह आदमी कहीं पहुंचा है। ज़ेन की जो पैदाइश है वह ताओ और बुद्ध, लाओत्से और बुद्ध दोनों की क्रॉस ब्रीड है। इसलिए ज़ेन का कोई मुकाबला नहीं है। ज़ेन अकेला बुद्धिज्म नहीं है। हिन्दुस्तान से बौद्ध भिक्षु ध्यान की प्रक्रिया को लेकर गये। लेकिन हिन्दुस्तान के पास ताओ की पूरी दृष्टि न थी, पूरा फैलाव न था। ध्यान की प्रक्रिया थी जो स्वभाव में थिर कर देती थी। लेकिन स्वभाव में थिर होने की पूरी की पूरी व्यापक कल्पना हिन्दुस्तान के पास न थी। वह लाओत्से के पास थी। जब हिन्दुस्तान से बौद्ध भिक्षु ध्यान को लेकर चीन गये और वहां जाकर ताओ की पूरी फिलासफी, पूरी दृष्टि उनके ख्याल में आयी तो ज़ेन और ताओ दोनों एक हो गये। ध्यान और ताओ एक हो गये। इनसे जो पैदाइश हुई वह ज़ेन है। इसलिए ज़ेन न तो बुद्ध है, न लाओत्से है। ज़ेन बहुत ही अलग

बात है। इसलिए आज ज़ेन की जो खूबी है जगत में वह किसी और बात की नहीं है। उसका कारण है कि दुनिया की दो अद्‌भुत कीमती बातें बुद्ध और लाओत्से दोनों से पैदा हुई बात हैं। इतनी बड़ी दो हस्तियों के मिलन से कोई भी दूसरी बात पैदा नहीं हुई। उसमें ताओ का पूरा फैलाव है और ध्यान की पूरी गहराई है। कठिन तो है, जैसा आप कहते हैं, और सरल भी है। कठिन इसीलिए है कि हमारे सोचने के जो ढांचे हैं उनसे बिल्कुल प्रतिकूल है और सरल इसलिए है कि स्वभाव सरल ही हो सकता है। इसमें कुछ कठिन होने की बात ही नहीं है। ●

लाओत्से कहता है—धन्य हैं वे लोग जो हारे हुए ही हैं, क्योंकि उन्हें कोई हरा नहीं सकता। धन्य हैं वे लोग जो मिट ही गए, क्योंकि अब उन्हें कोई मिटा नहीं सकता। धन्य हैं वे लोग जो हैं ही नहीं, क्योंकि अब उनकी कोई मृत्यु संभव नहीं है

देवभूमि : मनाली

•

किशोरीरमण टण्डन

रात बरसात हो चुकी है। रास्ता फिसलन भरा है। और मैं हूं कि वायुसेवन के लिए बड़े सबेरे निकल पड़ा हूं, देवदार के सघन झुरमुट की ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी पगडंडी पर—ऊपर... और ऊपर... और ऊपर !

तभी सहसा दृष्टि उठती है, और मैं जहां-का-तहां रुक जाता हूं—अवाक्, स्तब्ध ! न शरीर का भान है, न स्थान का, न समय का ! जो दृश्य देख रहा हूं उसने जैसे सम्मोहन कर दिया है। हिममंडित धवल शैल-शिखर के मस्तक को

स्पर्श करता हुआ चतुर्थी का-सा चांद शोभायमान था वहां। बड़ा ही अलौकिक और अपूर्व दृश्य था वह ! वर्णनातीत !!

बचपन में किसी चित्रकार द्वारा अंकित एक कलाकृति देखी थी — जिसमें गिरिराज हिमालय को शिव रूप में कल्पित किया गया था। शिव के जटाजूट पर चंद्र, प्रवहमान गंगा की जलधारा और तरु–लताओं के रूप में आवेष्टित सर्प समूह ! बड़ा ही नयनाभिराम लगा था वह चित्र और हृदय पटल पर एक अमिट छाप छोड़ गया था। आज लगा जैसे वह चित्र साकार होकर दृश्यमान हो रहा है। बस, अनायास ही श्रद्धा से दोनों हथेलियां जुड़ जातीं हैं और नमन की मुद्रा में शिर नत हो जाता है, साक्षात् शंकर के दर्शन के भाव में !

* * *

हिमाचल प्रदेश में कुल्लू स्थित मनाली की सौन्दर्य-स्थली में आचार्यश्री रजनीश का श्रीकृष्ण चरित्र पर २६ सितम्बर से ५ अक्तूबर तक प्रवचन-शिविर का आयोजन किया गया था। पहले अनेक दुविधाएं थीं मन में-आखिर कृष्ण पर अब शेष क्या रहा है बोलने को ? जब असंख्य ग्रन्थ मौजूद हैं— श्रीमद्भगवद्गीता की सैकड़ों टीकाएं विद्यमान हैं, आदि अनेक प्रश्न मन में उमड़-घुमड़ रहे थे।

अब लगता है, जो कुछ पढ़ा था, मनन किया था अपर्याप्त था। वर्तमान और भविष्य के संदर्भ में कृष्ण की उपयोगिता कितनी सार्थक और विधेयक है, इस विषय पर आचार्यश्री जैसा युगद्रष्टा ही एक मात्र बोलने का अधिकारी हो सकता है। एक नई दृष्टि, एक नई संवेदना, एक नया पहलू सामने आता है कृष्ण का, आचार्यश्री के प्रवचनों से, जब वे कहते हैं :

"अभी भी कृष्ण मनुष्य की समझ के बाहर हैं। भविष्य में ही संभव हो पाएगा कि कृष्ण को हम समझ सकें।.... कृष्ण ही अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जो धर्म की तरल गहराइयों और ऊंचाइयों पर होकर भी गम्भीर नहीं हैं, उदास नहीं हैं, रोते हुए नहीं हैं। साधारणतः सन्त का लक्षण ही रोता हुआ होना है—जिन्दगी से उदास, हारा हुआ, भागा हुआ। कृष्ण ही अकेले नाचते हुए व्यक्ति हैं— हंसते हुए, गीत गाते हुए।... कृष्ण अकेले ही समग्र जीवन को पूरा ही स्वीकार किये हुए हैं।... कृष्ण अकेले ही समग्र जीवन को पूरा ही स्वीकार किये हुए हैं। जीवन की समग्रता की स्वीकृति उनके जीवन में फलित हुई है। इसलिए इस देश में सभी अवतारों को आंशिक अवतार कहा है, केवल कृष्ण को ही पूर्ण अवतार.... कृष्ण पूरे ही परमात्मा हैं... आज के युग में (और भविष्य में भी) हंसता-खेलता, नाचता-कूदता व प्रेम करता हुआ और बांसुरी बजाता हुआ अगर कोई धर्म हो सकता है, तो वह कृष्ण का लीलामय चरित्र ही हो सकता है...."

इससे पूर्व शायद ही किसी मनीषी ने कृष्ण के चरित्र को इतना उजागर करने का प्रयत्न किया होगा, जितना आचार्यश्री ने किया है।

* * *

श्रीकृष्ण के अलौकिक चरित्र को उजागर करने के लिए मनाली को ही क्यों चुना गया— हो सकता है यह भी एक संयोग ही हो, लेकिन इसे कोरा संयोग न मानकर यथार्थ की ही संज्ञा दी जानी चाहिए।

इसमें कोई संदेह नहीं कि काश्मीर की प्राकृतिक छटा अपने ढंग की निराली है और किसी कवि के कथनानुसार :

'यदि धरती पर कहीं स्वर्ग है
तो यहीं है, यहीं है, यहीं है!'

लेकिन यदि काश्मीर की तुलना मनाली से की जाए, तो लगता है कि मनाली की नैसर्गिक सुषमा काश्मीर से कहीं बढ़चढ़ कर है। मनाली की पर्वत श्रेणियां, हिमाच्छादित शैल-शिखर, हिमनद, आकाश से बातें करते हुए देवदार के वृक्ष, रंग-बिरंगे सुमनों की महक, मादक बयार के झोंके, गर्जन-तर्जन करते जलप्रपात— सभी कुछ अकृत्रिम, अनछुए, कुंवारे सौन्दर्य के बोधक हैं। और जिस कवि हृदय ने इसे 'वैली आफ गॉड्स (देवताओं की घाटी) कहकर संबोधित किया है उसके सौन्दर्य-बोध की दाद दिये बिना नहीं रहा जा सकता।

किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि एक बार शिव और पार्वती इस क्षेत्र का परि-भ्रमण कर रहे थे। पार्वती के हाथों में एक मंजूषा थी जिसमें छोटे-बड़े अनेक देवता विराजमान थे। संयोग की बात कि प्रभंजन के एक झोंके से मंजूषा का पट खुल जाता है और उसमें विद्यमान ३०० देवता चारों और बिखर जाते हैं। और यही कारण है कि कुल्लू-मनाली क्षेत्र का ऐसा कोई गांव नहीं है जिसका अपना कुलदेवता न हो।

इससे अलावा यह भूमि ऋषियों और मुनियों की तपोभूमि भी रही है। कहते हैं महर्षि व्यास ने यहीं तपस्यारत होकर महाभारत की रचना की थी और व्यास नदी का नामकरण उन्हीं के नाम पर हुआ है। फिर वशिष्ठ कुंड और वशिष्ठ मंदिर भी इसी बात के साक्षी हैं। सागर तल से १४००० फुट की ऊंचाई पर पर्वतों के बीच भृगु जलागार है जहां भृगु ऋषि ने तपस्या थी। कहते हैं पाण्डवों ने अज्ञातवास भी यहीं किया था।

अतएव ऐसे पुनीत स्थल पर जहां महर्षि व्यास द्वारा कृष्ण की श्रीमद्-भगवद्गीता की संरचना हुई हो वहां ५०००वर्ष के बाद आचार्यश्री रजनीश

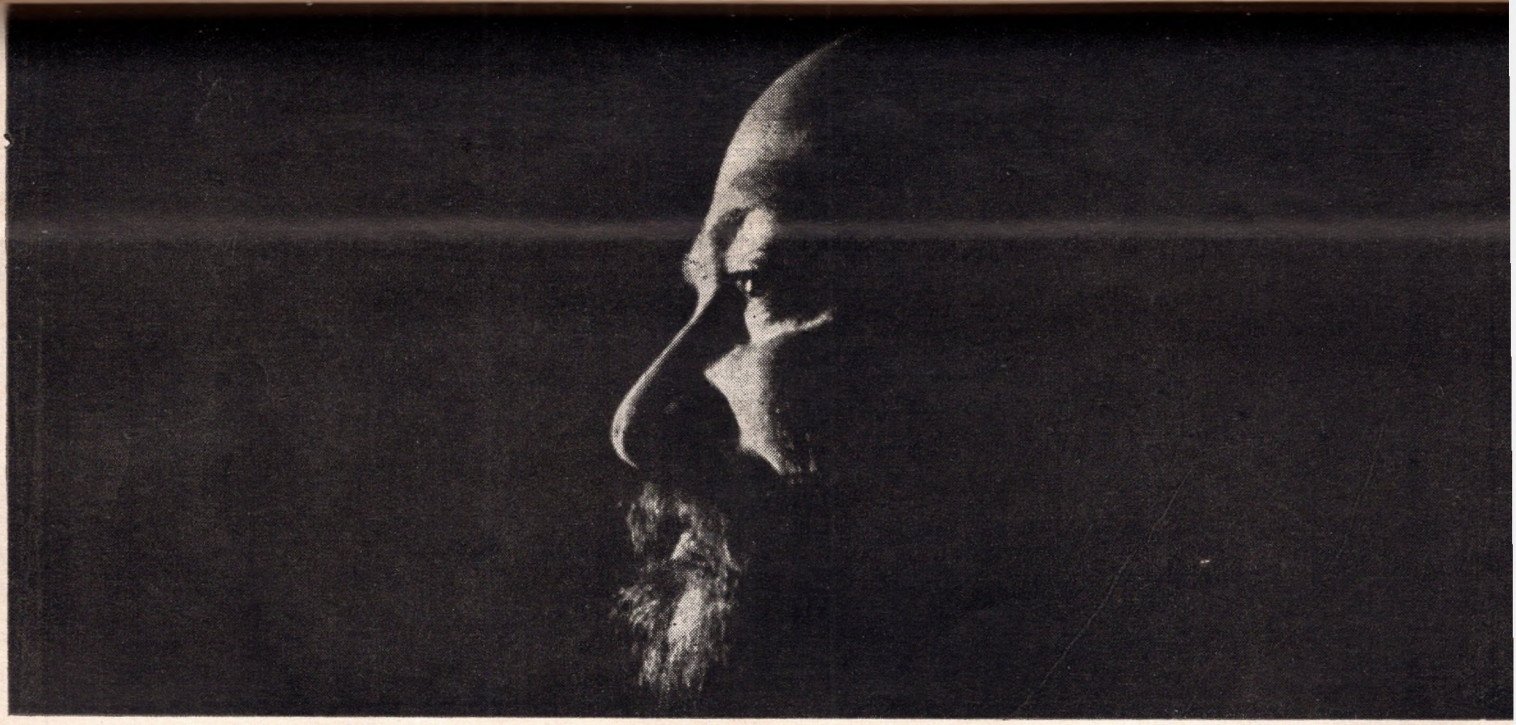

११ दिसम्बर : आचार्यश्री के जन्मोत्सव की पावन वेला

छायाकार : चैतन्य भारती

समर्पित तुम्हीं समर्पण तुम्हें

अभी तो उगे, पल्लवित हुए, वरण अमृत का कर आये,
अगम की यात्रा पर निकले, सीप में सागर भर लाये;
हमारे मधु अभिनन्दन तुम्हें !
हमारे शत--शत वन्दन तुम्हें !

तर्क के पार, बुद्धि के परे, तपस्वी प्रति पग उतरे खरे,
टूट कर मिटे, और तब बने, नया लावण्य लिये निखरे;
छाँह देते अपनी घन तुम्हें !
हमारे शत--शत वन्दन तुम्हें !
हमारे मधु अभिनन्दन तुम्हें !

रागी नहीं, विरागी नहीं, न भज गोविन्द, न भज राधा;
नहीं अज्ञान, ज्ञान भी नहीं, सभी बाधा, तो क्या साधा ?
धूलि छू होती चन्दन तुम्हें !
हमारे शत-शत वन्दन तुम्हें !
हमारे मधु अभिनन्दन तुम्ह !

प्रकृति में प्रभु, प्रभु में संसार, एक ही जीवन के दो छोर;
वही है कृष्ण, वही है कंस, संत भी वही, वही है चोर,
मिला यह कैसा दर्पण तुम्हें !
हमारे शत-शत वन्दन तुम्हें !
हमारे मधु अभिनन्दन तुम्हें !

वृक्ष को बीज पूजता रहे, बीज भी जाय, न तरु हो पाय,
रुग्ण मानव पूजा पर रुका, भावना विफल, स्वयं असहाय,
निरर्थक पूजन-अर्चन तुम्हें !
हमारे शत-शत वन्दन तुम्हें !
हमारे मधु अभिनन्दन तुम्हें !

सहज हो जियो, भोग ना योग, जाग जाओ वन जाओ बुद्ध,
साधना, क्रिया, जाप, तप व्यर्थ, शून्य ही द्वार, शून्य ही शुद्ध;
बोध का यह अक्षय धन तुम्हें !
हमारे शत--शत वन्दन तुम्हें !
हमारे मधु अभिनन्दन तुम्हें !

खोजते दूर कहां भगवान, कहां है द्वैत, कहां व्यवधान ?
स्वयं के चरणों पर निज शीश, उतर देखो निज में, कर ध्यान—
समर्पित तुम्हीं समर्पण तुम्हें !
हमारे शत-शत वन्दन तुम्हें !
हमारे मधु अभिनन्दन तुम्हें !

—महीपाल

की अमृतवाणी द्वारा पुनः कृष्ण चरित्र की स्वर लहरी निनादित हुई, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है?

* * *

सुबह का समय है। ट्रेवलर्स लाज के विस्तृत खुले लान की हरित दूब पर ओसकण या रात की बूंदाबांदी के जलबिन्दु झलक रहे हैं। चारों ओर उद्यान की क्यारियों में खिले बहुरंगी पुष्प अपनी मादक सुगंध बिखेर रहे हैं। ठीक सामने गिरिराज हिमालय की बर्फ से ढकी चोटी ध्यानरत तपस्वी की तरह समाधिस्थ है और श्रोता समुदाय के बीच विराजमान आचार्यश्री की दिव्य वाणी गूंज रही है :

"कृष्ण की पूर्णता का अर्थ अनन्तता है।
कृष्ण साधक नहीं, सिद्ध हैं।
कृष्ण समस्त को स्वीकार करते हैं...न सुख छोड़ रहें हैं, न दुःख छोड़ रहे हैं।
कृष्ण त्यागवादी भी नहीं हैं, भोगवादी भी नहीं हैं।
बुद्ध की जो परम उपलब्धि है, कृष्ण का सहज जीवन है।
कृष्ण करना नहीं सिखाते, होना सिखाते हैं?"

* * *

कुल्लू पहुंचते-पहुंचते रात हो गई है। ९ बज गए हैं। अभी ४० किलो मीटर का रास्ता और तय करना है। बस का ड्राइवर, देर से सही, लेकिन आज ही हमें मनाली पहुंचाने की जैसे कसम खाए हुए है। व्यास नदी के किनारे-किनारे ऊपर चढ़ती हुई संकड़ी, घुमावदार, टेढ़ी-मेढ़ी सड़क पर सतर्क गति से बस बढ़ी चली जा रही है। सड़क के दोनों ओर विशालकाय वृक्षों के बीच से प्रवाहित ठंडे पवन की सायं-सायं की आवाज आ रही है। तभी एक स्थान पर बस ड्राइवर ऊंची आवाज में कह उठता है—"ये देखो सेब।" और हमारे मित्र विकास साहू, जो कभी-कभी नींद के झोंके ले रहे हैं, अचानक चौंककर उठ खड़े होते हैं और तर्जनी से इशारा करते हुए जोर-जोर से कहने लगते हैं—"हां, हां, शेर! वह देखो शेर, सामने सड़क पर शेर खड़ा है, शेर!" सारे सहयात्री हैरान, परेशान! सभी उठ खड़े होते हैं शेर का नाम सुनकर। हमारे मित्र महीपालजी उनसे पूछ रहे हैं—"कहां है शेर? मुझे तो नहीं दिखता।" और साहू महाशय हैं कि रट लगाए जा रहे हैं—"वो देखो, वो! आंखें चमक रही हैं उसकी!"

और तभी ड्राइवर की आवाज फिर सुनाई देती है—"शेर नहीं, साहब, सेब। अब यहां से सेब के बगीचे शुरू होते हैं।"

इतना सुनना था कि बस में बैठे यात्रियों की जो हंसी फूटती है, बंद ही नहीं हो रही है। श्री क्रियानन्दजी (अब स्वामी योग चिन्मय), अमरीकी महिला प्रेमानन्द (अब मां योग आनंद प्रेम), जो बस में बैठे हुए भी ध्यान का अभ्यास कर रहे थे, हंसते-हंसते लोटपोट हुए जा रहे हैं और हमारे मित्र महीपालजी का तो हंसी के मारे ऐसा बुरा हाल था कि मनाली पहुंचकर भी वह अपने पर काबू न पा सके थे !

* * *

प्रति दिन संध्या समय प्रश्नोत्तर के पश्चात् ४० मिनिट के लिए ध्यान के प्रयोग का कार्यक्रम चलता था। अद्भुत दृश्य होता था वह भी। ९० प्रतिशत लोग ध्यान में चले जाएं -- इससे बढ़कर और चमत्कार क्या हो सकता है। आचार्यश्री की अलौकिक आत्मिक-शक्ति और वाणी-ऊर्जा का अद्भुत प्रभाव ही कहना चाहिए इसे !

आचार्यश्री का सुझाव चल रहा है... आंख बन्द कर लें... गहरी सांस लेना शुरू करें और गहरी सांस छोड़ें... और भीतर देखते रहें... सांस आई, सांस गई। शक्ति पूरी लगाएं... गहरी सांस लें... गहरी सांस छोड़ें (बहुत से साधक नाचने-कूदने, रोने-चिल्लाने, तरह-तरह की आवाजें निकालते लगते हैं)। आचार्यश्री का सुझाव जारी है... गहरी सांस, और गहरी सांस और गहरी सांस लें और छोड़ें... पूरी शक्ति लगा दें... भीतर देखते रहें -- सांस आई, सांस गई (कुछ लोगों के हुंकारने की आवाज आ रही है, कुछ के रोने, चीखने, चिल्लाने की आवाज)।

सिर्फ दो मिनिट बचे हैं... भीतर कुछ उठ रहा है... उठने दें... पूरी ताकत लगा दें... गहरी, गहरी, गहरी सांस और गहरी सांस,... शरीर रोये रोने दें... हंसे हंसने दें... नाचे नाचने दें... जो होता है होने दें (तभी एक बड़ी ही सुरीली लंबी, कारुणिक आवाज वातावरण में गूंज जाती है -- शायद यह आवाज जयवंती बहन की है)।

सुझाव चल रहा है: शरीर को छोड़ दें, पूरी तरह छोड़ दें... आप शरीर से अलग हैं... शरीर को जो होता है होने दें... जरा भी न रोकें... जो हो रहा है उसमें 'कोआपरेट' करें... सहयोग करें। (कई चीखें, चीत्कार, अट्टहास सुनाई दे रहे हैं। कोई नाच रहा है, कोई उछल रहा है, कोई निर्वस्त्र हो गया है, कोई जमीन पर लोट रहा है)।

तीसरा सत्र शुरू होता है: सांस गहरी और भीतर पूछें -- मैं कौन

हूं...मैं कौन हूं...मैं कौन हूं (चीत्कार के साथ बड़ी मर्मभेदी आवाज आती है किसी की—मेरे प्रभु, मैं कौन हूं, कौन हूं, कौन हूं? और फिर धड़ाम से गिरने की आवाज) थका डालें अपने को...आखिरी ताकत लगा दें...फिर विश्राम में जाना है!

अंत में: छोड़ दें—पूछना छोड़ दें...श्वास लेना छोड़ दें...न कुछ पूछें, न कुछ करें...सब मिट गया...सब शांत...शरीर मर गया, है ही नहीं शरीर...शून्य...केवल शून्य...इस शून्य में ही प्रभु का आगमन होगा...प्रतीक्षा करें...प्रतीक्षा करें...इस शून्य में ही प्रभु का द्वार है (कइयों की सुबक-सुबक कर रोने की आवाज आ रही है) ...समर्पित कर दें प्रभु के चरणों में अपने को...प्रकाश ही प्रकाश शेष रह जाता है...शांति ही शांति शेष रह जाती है।...धीरे-धीरे भीतर के इस जगत से वापस लौट आएं...बहुत आहिस्ता-आहिस्ता आंखें खोलें...

ध्यान की बैठक की समाप्ति पर कुछ लोग उठ गए हैं, कुछ ध्यानस्थ अभी भी पड़े हैं। सब ओर विचित्र शांति, विचित्र नीरवता, विचित्र मौन का साम्राज्य है!

* * *

आज प्रातःकाल वायु सेवन के लिए अजानी, अचीन्ही, ऊबड़-खाबड़, पगडंडी की राह पकड़ ली है और देवदार के घने वन के मध्य से होकर वह पगडंडी हिडिम्बा मंदिर के प्रांगण में पहुंचा देती है। काष्ठ-निर्मित मंदिर अति प्राचीन लगता है। बौद्धकालीन शिल्प कला का आभास देता है। मंदिर के द्वार पर अंकित भयानक आकृतियां उस एकांत में शरीर में सिहरन-सी भर देती हैं। कहते हैं हिडिम्बा ने अपने दैत्य भाई से पाण्डवों की रक्षा की थी और पुरस्कारस्वरूप भीम ने हिडिम्बा से शादी कर ली थी। इस मंदिर के पृष्ठ भाग के बरामदे में हिप्पी स्त्री-पुरुष का एक जोड़ा एक दूसरे के गले में बांहें डाले आलिंगनबद्ध शयन कर रहा है। मेरी पदचाप से पुरुष हिप्पी ने थोड़े-से नेत्र खोले, मुस्कराया और फिर उसी तरह बिना किसी संकोच के आंखें मूंदकर सो गया। एक मित्र ने बताया कि उसने कई बार एक हिप्पी स्त्री को इस मंदिर के आसपास के वन में निर्वस्त्र घूमते देखा है। उसकी बात पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता।

* * *

सुबह की बैठक में किसी ने प्रश्न किया है कि कृष्ण का गोपियों के

वस्त्रहरण का क्या अर्थ है? और आचार्यश्री उत्तर में कह रहे हैं, जिसका तात्पर्य है कि, एक ही पक्ष क्यों देखते हो; दूसरा पक्ष जो द्रौपदी को वस्त्र-दान का है, क्यों नहीं देखते? जो वस्त्र हरण कर सकता है... वही वस्त्र दान भी कर सकता है। और यह क्षमता केवल कृष्ण में है!

गीता में वर्णित भक्त और स्थितप्रज्ञ के अंतर के बारे में किए गए प्रश्न पर आचार्यश्री बोल रहे हैं — "स्थितप्रज्ञ का मतलब है जो भक्त नहीं रहा, भगवान हो गया है। भक्त का मतलब है, जो भगवान होने की यात्रा पर है। भक्त दीवार और स्थितप्रज्ञ द्वार है।" लाओत्से का वचन है — सीक एंड यु विल नाट फाइंड. डोंट सीक एंड यु विल फाइंड. बिकाज़ ही इज हियर एंड नाऊ (खोजने पर नहीं मिलेगा। नहीं खोजने पर ही मिलेगा क्योंकि वह (प्रभु) यहीं और अभी है)।

गीता पर सैकड़ों टीकाएं लिखी गईं, सहस्रों व्याख्याएं की गईं लेकिन शायद ही कोई इतनी गहराई और इतनी ऊंचाई से गीता के रहस्य का उद्-घाटन कर सका होगा जिस तरल गहराई और ऊंचाई से आचार्यश्री करने में समर्थ हुए हैं। कोई ऐसा प्रश्न नहीं है जिसका सम्यक् उत्तर उनके पास न हो। ऐसी प्रज्ञा है आचार्यश्री की!

* * *

इस अध्यात्म शिविर में दो विदेशी महिलाएं भी सम्मिलित थीं — एक जापानी और दूसरी अमरीकी। यद्यपि अध्यात्म के क्षेत्र में दोनों की पूर्व तैयारी थी, लेकिन राह नहीं मिल रही थी। आचार्यश्री के सान्निध्य में आने पर उनका सारा भटकाव दूर हो गया था। दोनों ही सतत साधना और ध्यान में रत दिखाई देती थीं। एक अलौकिक शान्ति और माधुर्य के दर्शन होते थे दोनों की मुखमुद्रा पर।

प्रवचन के समय दोनों ही ध्यानस्थ होकर बैठ जाती थीं, और आश्चर्य की बात तो यह थी कि यद्यपि दोनों ही प्रवचन की भाषा हिन्दी से अनभिज्ञ थीं फिर भी जो कुछ कहा–बोला जाता था उसे अक्षरशः आत्मसात कर लेने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। दोनों से अलग-अलग बात करने पर दोनों ने एक ही बात कही कि प्रवचन के समय आचार्यश्री की दिव्य वाणी की तरंगों के स्पर्श मात्र से ध्यान की स्थिति में उनका मानस वह सब कुछ ग्रहण कर लेता है जो आचार्यश्री के मुख से निःसृत होता है। बड़ी अद्भुत बात थी यह!

और अंत में वह घड़ी आ ही जाती है जिसका आना अनिवार्य था — समापन की घड़ी — विदा की घड़ी। और मित्र महीपालजी ने जिस समय माइक पर आचार्यश्री को श्रद्धा-नैवेद्य के रूप में अपनी भावमयी कविता की पंक्तियां रुंधे-रुंधे कंठ और भरे-भरे हृदय से भेंट कीं :

मिला यह कसा दर्पण तुम्हें !
.....
सर्मापत तुम्हीं समर्पण तुम्हें !
.....
हमारे शत-शत वंदन तुम्हें !
हमारे मधु अभिनंदन तुम्हें !

(पूरी कविता मध्यवर्ती पृष्ठ पर देखिए)

उस समय शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसके नेत्र भावोद्रेक से अश्रुपूरित न हो आए हों !

और आचार्यश्री की वाणी निःसृत हो रही है :

मनुष्य की सभ्यता कृष्ण की समझ से सरल हो सकेगी।
कृष्ण की समझ से अनुग्रहपूर्वक जीवन को वरदान समझा जा सकेगा।
कृष्ण की समझ द्वार बनेगी कृष्ण की वापसी का।
भविष्य में लोगों को रोशनी मिलने वाली है कृष्ण से ही।
हम स्वस्थ दुनिया नहीं पंदा कर सके, हां, कृष्ण से वह अपेक्षा है।
कृष्ण का भविष्य के लिए बहुत अर्थ है !

और ऐसा लग रहा था जैसे हिममंडित शैल-शिखरों से ध्वनित-प्रतिध्वनित आचार्यश्री की यह दिव्य वाणी व्यास नदी की कलकल से समरूप होकर दिशाओं-दिशाओं में अनुगंजित हो रही है और कृष्ण की बांसुरी की स्वर लहरी के समान जन-जन के हृदयों को रस-प्लावित कर रही है !

'पराग' सम्पादकीय,
टाइम्स आफ इंडिया,
बम्बई–१

●

संकलन :
लहरचंद शाह

सत्यं | शिवं | सुंदरम्

मनुष्य के जीवन में या जगत के अस्तित्व में एक बहुत रहस्यपूर्ण बात है। जीवन को अगर हम खोजेंगे तो जीवन भी तीन इकाइयों पर खंडित हो जाता है। अस्तित्व को खोजने जायेंगे तो अस्तित्व भी तीन इकाइयों पर खंडित हो जाता है। तीन की संख्या बहुत रहस्यपूर्ण है। जबतक धार्मिक लोग तीन की संख्या की बात करते थे तबतक तो हंसा जा सकता था, लेकिन अब वैज्ञानिक भी तीन के रहस्य को स्वीकार करते हैं। पदार्थ को तोड़ने के बाद अणु के विस्फोट पर एटामिक एनालिसिस से एक बहुत अद्‌भुत बात पता लगी है, और वह यह है कि अस्तित्व जिस ऊर्जा से निर्मित है उस ऊर्जा के तीन भाग हैं– न्यूट्रान, प्रोट्रान, इलेक्ट्रान–एक ही विद्युत् तीन रूपों में विभाजित होकर सारे जगत का निर्माण करती है। मैं एक शिव के मंदिर में कुछ दिन पहले गया था और उस मंदिर के पुजारी से मैंने पूछा कि यह शिव के पास जो त्रिशूल रखा है, इसका क्या प्रयोजन है। उस पुजारी ने कहा, शिव के पास त्रिशूल होता ही नहीं, प्रयोजन

की कोई बात नहीं है। लेकिन वह त्रिशूल बहुत पहले कुछ मनुष्यों की सूझ का परिणाम है। वह तीन का सूचक है। हजारों मंदिर इस जगत में हैं और हजारों तरह से उस तीन के आंकड़े को पकड़ने की कोशिश की गयी है। ईसाई अस्तित्व को तीन हिस्से में तोड़ देते हैं, आत्मा, परमात्मा और ध्वनिगोष्ठ और हमने त्रिमूर्तियां देखी हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश। यह बड़े मजे की बात है, कि ब्रह्मा, विष्णु महेश ये तीनों वही काम करते हैं जो न्यूट्रान, प्रोट्रान और इल्क्ट्रोन करते हैं। ब्रह्म सृजनात्मक शक्ति हैं, विष्णु संरक्षण शक्ति हैं और शंकर विध्वंस शक्ति हैं। ये तीनों के आंकड़े मनुष्य के जीवन में बहुत बहुत द्वारों से पहचाने गये हैं। परमात्मा और परम अनुभूति को जिन्होंने जाना है, वह सत्, चित्, आनंद है। एग्जिस्टेंस, कांसेसनेस और ब्लिस इन तीन टुकडों में बांटते हैं। जिन्होंने मनुष्य जीवन की गहराइयां खोजी हैं या सत्यं, शिवं, सुन्दरम् इन तीन टुकड़ों में मनुष्य के व्यक्तित्व को, उसकी पर्सनल्टी को बांटते हैं।

यह भी थोड़ा समझ लेने जैसा है कि मनुष्य का पूरा गणित तीन का विस्तार है। शायद ही आपने कभी सोचा हो कि मनुष्य ने नौ आंकड़े, नौ की संख्या तक ही सारी संख्याओं को क्यों सीमित किया? हमारी सारी संख्या नौ का ही विस्तार है और नौ तीन, तीन के गुणनफल से उपलब्ध होता है। और बड़े आश्चर्य की बात है कि हम नौ के टुकड़े को गुणनफल करते जायं तो जो भी आंकड़े होंगे उनका जोड़ सदा नौ होगा। अगर हम नौ का दुगुना करें अठारह, तो आठ और एक नौ हो जाएगा। अगर तीन गुना करें २७ तो सात और दो ९ हो जाएगा। हम अरबों खरबों का भी जोड़ करें तो भी जो आंकड़े होंगे उनका जोड़ सदा ९ होगा। शून्य है अस्तित्व जो पकड़ के बाहर है। और जब अस्तित्व तीन में टूटता है तो पहली बार पकड़ के भीतर आता है। और जब अस्तित्व तीन से तिगुना हो जाता है तो पहली दफा आंखों के लिए सत्य होता है। और जब तीन के आंकड़े बढ़ते चले जाते हैं तो अनन्त विस्तार होना दिखाई पड़ने लगता है। मनुष्य के व्यक्तित्व पर भी ये तीन की परिधियां ख्याल करने जैसी हैं। सत्यं मनुष्य की अन्तरतम, आन्तरिक, इनर-मोस्ट केन्द्र है। सत्यं का अर्थ है, मनुष्य जैसा है अपने में, जान ले। सत्यं मनुष्य के स्वयं से संबंधित होने की घटना है। सुन्दरम् सत्यं के बाद की परिधि है। मनुष्य प्रकृति से सम्बन्धित हो जाएगा, अपने से नहीं। मनुष्य निसर्ग से सम्बन्धित हो जाएगा, नेचर से सम्बन्ध जोड़ ले तो सुन्दरम् की घटना, दि ब्यूटीफुल की घटना घटती है। और शिवं मनुष्य की सबसे बाहर की परिधि

है। शिवं का मतलब है दूसरे मनुष्यों से सम्बन्ध। शिव है समाज से सम्बन्ध, सुन्दरम् है प्रकृति से सम्बन्ध, सत्यं है स्वयं से सम्बन्ध। हमारे बाहर प्रकृति का एक जगत है। हमारे बाहर मनुष्यों का एक जगत है और हम हैं। तो मनुष्य के बिन्दु पर अगर हम तीन वर्तुल बनायें, तीन कंसेन्टेड सर्किल खींचें तो पहला निकटतम जो सर्किल है वह सत्यं का है, दूसरा जो सर्किल है वह सुन्दरम् का है, प्रकृति से सम्बन्धित होने का, और तीसरा जो सर्किल है वह शिवं का है वह मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्धित होने का वर्तुल है। शिवं सबसे ऊपरी व्यवस्था है इसलिए समाज की दृष्टि में शिवं सबसे महत्वपूर्ण है। इसलिए समाज नीति से ज्यादा धर्म के सम्बन्ध में विचार नहीं करता। समाज के लिए बात समाप्त हो जाती है। अगर आप दूसरे के लिए अच्छे हैं तो समाज की बात समाप्त हो जाती है। समाज इससे ज्यादा आपसे मांग नहीं करता। समाज कहता है, दूसरे के साथ व्यवहार अच्छा है तो हमारा काम पूरा हो गया। इसलिए समाज सिर्फ नीति से चल सकता है। समाज को धर्म और दर्शन की कोई आवश्यकता नहीं है। समाज का काम नीति पर पूरा हो जाता है। एक व्यक्ति दूसरे के साथ अच्छा होना चाहिए। समाज को इसकी चिन्ता नहीं है कि व्यक्ति प्रकृति के साथ भी अच्छा हो। समाज को इसकी भी चिन्ता नहीं है कि व्यक्ति अपने साथ भी अच्छा हो। समाज को इसकी भी चिन्ता नहीं है कि व्यक्ति अपने भीतर सत्य को उपलब्ध हो। इसकी भी चिन्ता नहीं है कि चांद-तारों से उसके सौन्दर्य के सम्बन्ध बनें। उसकी सिर्फ एक चिन्ता है कि मनुष्यों के साथ उसके सम्बन्ध शुभ हों, गुड हों। इसलिए समाज शिव पर सारा जोर डालता है और जो लोग अपने जीवन में शिव को पूरा कर लेते हैं, समाज उनको महात्मा, साधु का आदर देता है। लेकिन अस्तित्व की गहराइयों में शिवं सबसे कम गहरी चीज है। सबसे उथली चीज है। इसलिए साधु अक्सर गहरे व्यक्ति नहीं होते। साधुओं से कहीं कवि और चित्रकार ही ज्यादा गहरा होते हैं। साधुओं से तो वह भी ज्यादा गहरा होता है जिसने चांद-तारों से अपना कोई सम्बन्ध जोड़ लिया है। असल म जो चांद-तारों से अपना सम्बन्ध जोड़ पाता है वह मनुष्य से तो जोड़ ही लेता है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन जो मनुष्य से सम्बन्ध जोड़ता है, जरूरी नहीं है कि वह चांद-तारों से भी जोड़ पाये।

सुन्दरम् की जिसकी प्रतीति गहरी है वह शिवं को तो उपलब्ध हो जाता है। जिसने ब्यूटीफुल को खोज लिया है वह गुडनेस को तो उपलब्ध हो जाता

है। क्योंकि गुडनेस अपने आप में बड़ी से बड़ी सौन्दर्य की अनुभूति है। जिसने सुन्दर को खोज लिया वह इतनी कुरूपता भी बर्दाश्त नहीं कर सकता कि बुरा हो सके। बुरा होना एक कुरूपता है, एक अग्लीनेस है। लेकिन जिसने शिव को साधा है, असुन्दर हो सकता है। और जिसने शिव को साधा है उसे सौन्दर्य में भी चुनाव करना पड़ता है। श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने एक सुझाव रखा था कि खजुराहो, कोणार्क और पुरी के मन्दिर मिट्टी में दबा दिये जाने चाहिए। क्योंकि उन मन्दिरों पर जो मूर्तियां हैं वे शुभ नहीं हैं, शिव नहीं हैं। सुन्दरम् हैं। लेकिन गुडनेस से उनका सम्बन्ध नहीं मालूम पड़ता है। खजुराहो की दीवालों पर जो मैथुन के चित्र हैं, जो नग्न सुन्दर स्त्रियों की प्रतिमाएं हैं, पुरुषोत्तमदास टण्डन का ख्याल था, इन्हें मिट्टी में दबा देना चाहिए। और गांधी जी भी उनके इस ख्याल से राजी हो गये थे। अगर रवीन्द्रनाथ ने बाधा न डाली होती तो हिन्दुस्तान की सबसे कीमती सम्पत्ति मिट्टी में दबा दी जा सकती थी। रवीन्द्रनाथ तो हैरान हो गये यह बात सुनकर कि कोई ऐसा सुझाव देगा। लेकिन टण्डन शिव के आदमी थे। क्या ठीक है यह पर्याप्त है। ऐसा सौन्दर्य उनके बर्दाश्त के बाहर है जिससे किसी के मन में अशुभ पैदा हो सके। वे ऐसी कुरूपता को भी पसन्द कर लेंगे जो शुभ की दिशा में ले जाती हो। इसलिए जिन देशों में साधुओं का बहुत प्रभाव है उन देशों में सौन्दर्य की प्रतिष्ठा कम हो जाती है। हमारा ही एक ऐसा अभागा मुल्क है। इस मुल्क में सौन्दर्य की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। सौन्दर्य अपमानित है, सौन्दर्य निन्दित है। बल्कि काउन्ट कैसरलेन हिन्दुस्तान से जर्मनी वापस लौटा तो उसने वहां जाकर लिखा कि मैं हिन्दुस्तान से यह समझ कर आया हूं कि कुरूप होना भी एक आध्यात्मिक योग्यता है। और बीमार होना भी आध्यात्मिक गुण है। और गन्दा होना भी साधना की अनिवार्य शर्त है। जैन साधु स्नान नहीं करेंगे। पसीने की जितनी बास आये उतनी गहरी साधना का सबूत मिलता है। दातुन नहीं करेंगे। मुंह पास ले जायं और आपको घबड़ाहट छूटे तो समझना चाहिए कि दूसरी तरफ जो आदमी है वह साधु है।

हिंदुस्तान ने शिव की बहुत प्रतिष्ठा की और इस प्रतिष्ठा ने सौन्दर्य को घातक नुकसान पहुंचाया। मेरी दृष्टि में गांधी शिव के अन्यतम प्रतीक हैं, लेकिन शिव मनुष्य की पहली परिधि है। बहुत गहरी नहीं है, पहली सीढ़ी है। जब हम दूसरे व्यक्ति से संबंधित होने का ही केवल ख्याल रखते हैं और जब हम यही सोचकर चलते हैं कि दूसरे से हमारे संबंध कैसे हों और यह

कभी नहीं सोचते कि हम कैसे हैं और यह भी कभी नहीं सोचते कि मनुष्यों के अतिरिक्त भी जगत का कोई अस्तित्व है, पत्थर भी हैं, नदियां भी हैं, पहाड़ भी हैं। जब इस विराट जीवन को मनुष्य के ही समाज में केन्द्रित कर देते हैं तो जगत और जीवन बहुत संकीर्ण हो जाता है। स्वभावतः जो सिर्फ शिव की ही साधना करेगा, उसके पाखंडी हो जाने का खतरा है। जरूरी नहीं है कि वह पाखंडी हो जाय, लेकिन उसका खतरा है क्योंकि वह बहुत ऊपर से जीवन को पकड़ने की कोशिश में लगा है। उसने जिन्दगी को जड़ों से नहीं पकड़ा है, उसने जिन्दगी को फूलों से पकड़ने की कोशिश की है। उसने जिन्दगी की बाहरी परिधि को लीपने-पोतने की कोशिश की है। वह चरित्र को ठीक करेगा, वह पानी छान के पियेगा, वह यह करना ठीक है या नहीं है, ऐसा होना ठीक है या नहीं ठीक है, यह सब सोचेगा लेकिन इस सारे सोच में वह जियेगा परिधि पर, गहराई में नहीं जी सकेगा। गांधी मेरे लिए पहले प्रतीक हैं जो शुभ के श्रेष्ठतम प्रतीक हैं। अगर कोई विकृत हो जाय तो हिटलर जैसा आदमी पैदा होगा और अगर कोई स्वीकृत हो जाय तो गांधी जैसा आदमी पैदा होगा। यह एक ही परिधि पर खड़े लोग हैं। आपको यह जानकर हैरानी होगी कि हिटलर सिगरेट नहीं पीता है, हिटलर मांस नहीं खाता है, हिटलर रात नियम से सोता है और सोकर ब्रह्म मुहूर्त में उठता है। हिटलर अविवाहित रहा है। हिटलर के जीवन में समझा जाय तो साधु के सब लक्षण पूरे हैं, लेकिन हिटलर से ज्यादा असाधु आदमी इस पृथ्वी पर दूसरा पैदा नहीं हुआ। यह थोड़ा सोचने जैसा है। अगर हिटलर थोड़ी सिगरेट पी लेता और थोड़ी शराब पी लेता और थोड़ा मांस खा लेता तो मैं समझता हूं दुनिया का उतना नुकसान न होता, जितना हुआ है। अगर वह किसी एकाध स्त्री से प्रेम कर लेता या पड़ोस की पत्नियों से लुक छिपकर थोड़ी बात कर लेता तो भी दुनिया का इतना बड़ा नुकसान न होता जितना हुआ है। वह आदमी सब तरफ से बंद हो गया है। सब तरफ से जो जबरदस्ती शुभ होने की कोशिश करेगा उसका अशुभ किसी और मार्ग से प्रगट होना शुरू हो जायेगा और बहुत बड़े पैमाने पर प्रगट होगा। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि जो लोग ऊपर से अहिंसा साध लेते हैं, उनकी आंखें, उनके नाकें, उनकी हाथों में, सबसे अहिंसा की जगह हिंसा झरने लगती है। जो लोग ब्रह्मचर्य साध लेते हैं उन्हें चौबीस घंटे सेक्स उनका पीछा करने लगता है। जो लोग किसी दिन उपवास किये हैं, अगर आप में से किसी अभागे ने किसी दिन उपवास किया

हो तो उसको पता होगा कि दिन भर भोजन के अतिरिक्त और कोई ख्याल नहीं आता और रात सिवाय भोजन के कोई सपना नहीं आता।

शुभ को अगर कोई आग्रहपूर्वक जबरदस्ती थोप लेगा, तो शुभ तो नहीं सधेगा, सिर्फ पाखंड होगा और विकृतियां और परवरशंस पैदा होंगे। लेकिन अगर कोई शुभ को पूरे मानपूर्वक साध ले तो भी पाखंड तो पैदा नहीं होता, चरित्र पैदा हो जाता है। शुभ चरित्र पैदा हो जाता है, लेकिन होता है परिधि पर, बहुत गहरे नहीं होता।

दूसरी परिधि सौन्दर्य की है। आचरण शिव की परिधि है और सौन्दर्य की हमारी जो अनुभूति है, एस्थेटिक है, जो सेंस है हमारे भीतर, सुन्दर की जो भाव दशा है, सुन्दर को ग्रहण करने की जो ग्राहकता है, सेंस्टीविटी है, वह दूसरी परिधि है। गांधी को मैं पहली परिधि का प्रतीक मानता हूं, सफल प्रतीक पुरुष। हिटलर को मैं पहली परिधि का असफल प्रतीक पुरुष मानता हूं। रवीन्द्रनाथ को मैं दूसरी परिधि का सफल प्रतीक पुरुष मानता हूं। उनके जीवन में सौन्दर्य सब कुछ है। सुनी है मैंने एक घटना कि गांधी रवीन्द्रनाथ के घर मे मेहमान हैं। सांझ घूमने निकल रहे थे तो उन्होंने कहा, आप भी चलेंगे। रवीन्द्रनाथ ने कहा, रुकिये, मैं थोड़ा बाल संवार लूं। गांधी की समझ के बाहर हो गया। स्वाभाविक है। इस बुढ़ापे में बाल संवारने की बात बेहूदी मालूम पड़ सकती है, किसी भी साधु को पड़ेगी। लेकिन कोई और होता तो गांधी तत्काल उससे कुछ कहे होते। रवीन्द्रनाथ से एकदम से कुछ कहना भी कठिन है। चुपचाप खड़े रह गये। उनके कहने में भी विरोध तो था, उनके चुप रहने में भी विरोध था। रवीन्द्रनाथ भीतर गये हैं और पांच मिनट बीत गये हैं, नहीं लौटे हैं। दस मिनट बीत गये हैं, नहीं लौटे हैं। तो गांधी के बरदाश्त के बाहर हो गया। उन्होंने भीतर झांककर देखा, आदम कद आइने के सामने खड़े हैं। इस बुढ़ापे में सब सफेद हो गये बालों को सम्हालते हैं और मंत्र-मुग्ध ऐसे हैं जैसे भूल गये हैं। गांधी ने कहा, क्या कर रहे हैं आप? इस उम्र में, और बालों को संवारने की इतनी फिक्र? रवीन्द्रनाथ मुड़े। उनका चेहरा जैसे समाधिस्थ था। उन्होंने कहा, जब जवान था, बिना संवारे चल जाता था। जबसे बूढ़ा हो गया हूं तबसे बहुत संवारना पड़ता है। रात्रि में बात हुई तो रवीन्द्रनाथ ने कहा कि मैं अक्सर सोचता हूं कि किसी को अगर मैं कुरूप दिखायी पड़ूं तो मैं उसको दुख दे रहा हूं, और दुख देना हिंसा है। और किसी को मैं सुन्दर दिखायी पड़ूं तो उसे मैं सुख दे रहा हूं, सुख देना

अहिंसा है। शायद ही किसी ने सोचा हो कि सौन्दर्य में अहिंसा हो सकती है। रवीन्द्रनाथ कह रहे हैं कि जब मैं किसी को सुन्दर दिखायी पड़ता हूं तो उसे सुख दे रहा हूं और सुख देना अहिंसा है। और जब मैं कुरूप दिखायी पड़ता हूं तो मैं दुख दे रहा हूं और दुख देना हिंसा है। तो रवीन्द्रनाथ कह रहे हैं कि मेरी नैतिकता मुझसे कहती है कि मैं सुन्दर दिखायी पड़ता रहूं। मरते, अंतिम क्षण तक प्रभु से एक ही प्रार्थना है कि मैं कुरूप न हो जाऊं। और यह हैरानी की बात है कि रवीन्द्रनाथ जैसे जैसे बूढ़े होते गये वैसे वैसे सुन्दर होते गये। मरते वक्त बहुत कम लोग इतने सुन्दर होते हैं जितने रवीन्द्रनाथ थे और रवीन्द्रनाथ को मरते वक्त देखकर कोई कह सकता था कि जैसे हिमालय के शिखर पर बर्फ आ जाय ऐसे उनके चेहरे पर वह जो बुढ़ापे की सफेदी और सफेद बाल आ गये थे उन्होंने जैसे श्वेत हिम से उन्हें ढंक लिया हो। वे जैसे गौरीशंकर हो गये थे। रवीन्द्रनाथ के मन मे सौन्दर्य की बड़ी गहरी पकड़ है। इतनी गहरी पकड़ है कि शुभ को भी वे सुन्दर का ही एक रूप समझते हैं, अशुभ को असुन्दर का एक रूप समझते हैं। बुरा आदमी इसलिए बुरा नहीं है कि बुरा काम करता है, बुरा आदमी इसलिए बुरा है कि बुरा आदमी कुरूप है और बुरे आदमियों का बुरा काम भी इसलिए बुरा है कि बुरे काम के परिणाम कुरूप हैं। अग्लीनेस से विरोध है, असाधुता का विरोध नहीं है। विरोध है कुरूपता। और अगर साधु भी कुरूपता पैदा कर रहा है जीवन में तो रवीन्द्रनाथ का विरोध है। सौन्दर्य की जिनके जीवन में थोड़ी सी प्रतीति होगी वे मनुष्य के जगत के पार और बड़ा जगत है, उसमें प्रवेश कर जाते हैं। साधारणतः हम मनुष्य की दुनिया में ही जीते हैं। सच तो यह है कि मनुष्य की दुनिया में भी पूरी तरह नहीं जीते हैं। वहां भी अधूरे जीते हैं। मनुष्य के पार पत्थर भी है, वृक्ष भी है, पहाड़ भी है, चांद तारे भी हैं, आकाश भी है। यह इतना विराट चारों तरफ फैला है, इससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। अभी लन्दन में एक सर्वे किया जा रहा था स्कूल के बच्चों का। तब दस लाख बच्चों ने यह कहा कि उन्होंने गाय नहीं देखी है। और सात लाख बच्चों ने कहा कि उन्होंने खेत नहीं देखा है। अब जिन बच्चों ने गाय नहीं देखी, खेत नहीं देखा ये एक अर्थ में जगत से बुरी तरह टूट गये हैं। इनका जगत से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। इनका सम्बन्ध सिर्फ मानवीय जगत से हैं। आज मैं एक किताब पढ़ रहा था। उस किताब के लेखक ने यह सुझाव दिया है कि चूंकि जमीन छोटी हो गई है और जमीन

पर रहने वाले लोग ज्यादा हो गये हैं इसलिए अब हमें अण्डरग्राउण्ड, जमीन के नीचे रहने का इन्तजाम कर लेना चाहिए। और धीरे धीरे सारी मनुष्यता को उस जमीन के नीचे रहने के लिए राजी कर लेना चाहिए। वह ठीक कह रहा है। अगर मनुष्यता इसी तरह बढ़ती गई तो आदमी को जमीन के नीचे रहना पड़ेगा। तब शायद हो सकता है, सूरज से भी हमारा कोई सम्बन्ध न रहे, चांद–तारों से भी हमारा कोई सम्बन्ध न रहे। तब हम प्रकृति से पूरी तरह टूट जायं और आदमी अकेली सचाई रह जाय या आदमी की बनायी गई चीजें अकेली सचाई रह जायं – कारखाने, मशीनें, मकान, आदमी या आदमी की दुनिया। आदमी की दुनिया इस विराट दुनिया का बड़ा छोटा हिस्सा है। अगर हम पूरी दुनिया को ख्याल में लें तो यह कोई हिस्सा ही नहीं है। अगर हम पूरे जगत के विस्तार को सोचें तो आदमी क्या है, वह कुछ भी नहीं है। उसकी यह पृथ्वी क्या है, वह भी कुछ नहीं है। उसका यह सूरज भी क्या है, वह भी कुछ नहीं है। हम जगत के नाकुछ हिस्से हैं। उस नाकुछ हिस्से में आदमी की दुनिया नाकुछ है। उस नाकुछ आदमी की दुनिया में दस-पचास आदमियों के बीच एक आदमी सम्बन्धित होकर जी लेता है। स्वभावतः इसके अस्तित्व में बहुत गहराई नहीं पैदा हो सकती है। फिर एक और समझ लेने जैसी बात है कि मनुष्य के साथ हमारे जो भी सम्बन्ध हैं वे अपेक्षाओं के, एक्सपेक्टेशन्स के सम्बन्ध हैं। इसलिए पूर्ण रूप से सुन्दर नहीं हो सकते। जहां अपेक्षा है वहां कुरूपता प्रवेश कर जाती है । मनुष्य से हमारे जो सम्बन्ध हैं वे मांग और पूर्ति के, डिमाण्ड और सप्लाई के सम्बन्ध हैं। नहीं, मालिक के साथ मजदूर का ही डिमांड और सप्लाई का सम्बन्ध है, ऐसा मत समझना। पति और पत्नी के बीच जो सम्बन्ध है वह डिमांड और सप्लाई का सम्बन्ध है। हम एक दूसरे के साथ सम्बन्धित हैं कुछ शर्तों के साथ। जब आदमी उस सौन्दर्य से सम्बन्धित होता है जगत के तो पहली दफा बेशर्त और अनकण्डीशनल होता है। और जब हम बेशर्त होते हैं तो सम्बन्धों की गहराई और ही हो जाती है। और जब हम सशर्त होते हैं तब सम्बन्धों की गहराई और हो जाती है। कोई गहराई नहीं रह जाती। सौन्दर्य के सम्बन्ध मनुष्य को गहरे ले जाते हैं। कवि, चित्रकार, नृत्यकार, मूर्तिकार, संगीतज्ञ, सौन्दर्य के स्रष्टा और सौन्दर्य के भाव को जानने वाले लोग हैं। लेकिन साधुओं के प्रभाव के कारण काव्य सौन्दर्य और संगीत हमारे जीवन में गहरा प्रवेश नहीं कर पाया। साधुओं को सदा डर रहा है इस बात का कि सौन्दर्य लोगों

को अनीति में न ले जाय, जबकि सचाई यह है कि अगर सौन्दर्य का बोध बढ़ जाय तो ही आदमी वस्तुतः नैतिक हो पाता है अन्यथा नैतिक नहीं हो पाता। सौन्दर्य का जितना गहरा बोध होता है उतना आदमी सेन्सिटिव हो जाता है, उतना संवेदनशील हो जाता है। और जितना संवेदनशील हो जाता है उतना अनैतिक होना कठिन हो जाता है। सौन्दर्य का बोध अनीति में नहीं ले जा सकता। सौन्दर्य के बोध की कमी ही अनीति में ले जाती है। अगर एक आदमी एक वेश्या के पास दस रुपये फेंक के प्रेम कर सकता है तो मैं कहूंगा उस आदमी में सौन्दर्य की संवेदना बहुत न के बराबर है, नहीं ही है। एक आदमी दस रुपये में प्रेम खरीदने की बात सोच सकता है, यह बताती है कि इसके पास एस्थेटिक सेंस जैसी कोई चीज नहीं है। एक आदमी रुपये से प्रेम खरीदने की बात सोच सकता है, यह बताती है कि इसके पास कोई आन्तरिक गहराई का अस्तित्व नहीं है। लेकिन हमें कोई कठिनाई नहीं होती, क्योंकि हम तो पत्नियां खरीद लेते हैं पूरे जीवन के लिए। चूंकि वह स्थायी सौदा है इसलिए शायद हम सोचते हों कि वेश्याओं के पास जाने वाले लोग बड़े अनैतिक हैं। लेकिन स्थायी सौदे और अस्थायी सौदे में बहुत फर्क नहीं है। वह सिर्फ लीज टाइम का फर्क है, लेकिन सौन्दर्य का बोध नहीं है। सच तो यह है कि जिस आदमी को सौन्दर्य का बोध है वह शायद किसी को पति और पत्नी न बना पायेगा। क्योंकि पति और पत्नी एक कान्ट्रैक्ट और एक सौदा है। प्रेम सौदा नहीं कर सकता। शायद दुनिया में प्रेम गहरा हो तो परिवार नये ढांचे पर निर्मित होगा। उसमें पति और पत्नी की मालिकयत वाली दुनिया और पजेशन की दुनिया खत्म हो जाएगी और उसमें सहज सम्बन्ध होंगे, जो सम्बन्ध भाव के सम्बन्ध हैं, जो सम्बन्ध दस्तखत किये हुए किसी रजिस्ट्री आफिस के सम्बन्ध नहीं हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि रजिस्ट्री आफिस में की गई या बैण्ड बाजे बजाकर किसी पुरोहित के सामने की गई, धार्मिक ढंग से की गई रजिस्ट्री, कि सेक्युलर ढंग से की गई, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता है।

सौन्दर्य का बोध दूसरी गहरी परिधि है। जो मनुष्य को जगत से ऊपर उठाती है और विराट से जोड़ती है। रवीन्द्रनाथ मुझे दूसरे प्रतीक मालूम होते हैं। और यह समझने जैसी बात है। जरूरी नहीं है कि दूसरी परिधि पर जो है वह जरूरी रूप से शिव भी हो, शुभ भी हो; लेकिन बहुत सम्भावना है उसके शिव और शुभ होने की। पहली परिधि के आदमी को जरूरी नहीं

है कि वह सिर्फ शुभ ही हो और सुन्दर का उसे बोध न हो। लेकिन उसके सौन्दर्य के बोध की कठिनाई ज्यादा है।

तीसरी परिधि है सत्य की, जहां व्यक्ति बाहर से नहीं, स्वयं से, अन्तः से सम्बन्धित होता है। इस अन्तरात्मा से, इस ब्रह्म से, इस आत्मा से यह जो मैं हूं, कब तक मैं आदमियों से ही सम्बन्धित होता रहूंगा। कब तक चांद तारों से ही सम्बन्धित होता रहूंगा। कभी मुझे अपने से भी संबंधित होना है। सत्यं तीसरा बिन्दु है जिसके प्रतीक अरविन्द हैं। जिनकी सारी खोज भीतर और भीतर, और भीतर, यह कौन है इसे जानने की खोज है। जो व्यक्ति सत्यं को उपलब्ध होता है उसके लिए शिवं और सुन्दरम् सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं। इसलिए अरविन्द आचरण के सम्बन्ध में बहुत अद्-भुत हैं। गांधी से पीछे नहीं हैं। और सावित्री लिखकर बता सके हैं कि सौन्दर्य के बोध में रवीन्द्र से पीछे नहीं हैं। और अगर अरविन्द को कविता के ऊपर नोबल प्राइज़ नहीं मिला तो उसका कारण यह नहीं है कि अरविन्द की कविता रवीन्द्र से पिछड़ी हुई है। उसका कारण यह है कि नोबल प्राइज़ बांटने वाले लोगों के दिमाग सावित्री को समझने में असमर्थ हैं। और रवीन्द्र अन्तरात्मा की खोज में भी गए, स्वयं की खोज में भी गए। अरविन्द सत्यं के प्रतीक हैं। ये तीन व्यक्ति मैं मौजूदा जिन्दगी से ले रहा हूं ताकि बात हमें साफ हो सके। लेकिन तीनों में से कोई भी मुक्त नहीं हो सकता है—न गांधी, न रवीन्द्र, न अरविन्द। क्योंकि ये तीनों अस्तित्व की बातें हैं। मुक्ति इसके पार शुरू होती है। अगर कोई आचरण पर रुक गया तो भी बंध जाता है, अगर कोई सौन्दर्य पर रुक गया है तो भी बंध जाता है। अगर कोई स्वयं पर रुक गया है तो भी बंध जाता है। पहला बन्धन जरा दूर है, दूसरा बन्धन जरा निकट है, तीसरा बन्धन अति निकट है। लेकिन तीनों ही बन्धन हैं। अगर कोई व्यक्ति स्वयं के भीतर ही रुक गया तो भी रुक गया। क्योंकि स्वयं के पार भी सर्व की सत्ता है। वह जो यह मैं है इसके पार भी ना मैं, वह जो मैं नहीं हूं, मैं उसकी भी सत्ता हूं। प्रकृति की नहीं। काजमिक एक्ज़ीस्टेंस भी है, जहां से प्रकृति पैदा होती है और जहां प्रकृति लीन होती है। चरित्र पर रुक जाऊं तो सामाजिक अंश बन कर रह जाता हूं, प्रकृति पर एक जाऊं तो प्रकृति का अंश बनकर रह जाता हूं। अपने पर रुक जाऊं तो कांसेसनेस का अंश होकर रह जाता हूं। लेकिन सर्वात्मा का अंश नहीं बन पाता हूं। इन तीनों के पास जो होता है वही

मुक्ति में प्रवेश करता है, वही फ्रीडम में, टोटल फ्रीडम में प्रवेश करता है।

सत्यं, शिवं और सुन्दरम् तीन मनुष्य की भाव दशाएं हैं। और जब तीनों भाव दशाओं के कोई पार होता है तो निर्भाव हो जाता है। तब वह बियोन्ड माइन्ड हो जाता है, तब वह मन के पार चला जाता है। समाधि तीनों के पार हो जाने का नाम है। लेकिन तीनों के पार होने के भी ढंग हैं। एक ढंग के प्रतीक रमण हैं और दूसरे ढंग के प्रतीक कृष्णमूर्ति हैं। तीनों के पार होने का एक ढंग तो यह है कि तीनों शान्त हो जायं। तीनों में से कोई भी न रह जाय, तीनों बिदा हो जायं। जैसे लहर खो गई सागर में, कोई लहर न बची – न शिवं की, न सुन्दरम् की, न सत्यं की। तीनों शान्त हो गईं। रमण निष्क्रिय समाधि को उपलब्ध होते हैं। तीनों शान्त हो गये हैं। न सत्यं की कोई पकड़ है, न शिवं की कोई पकड़ है, न सुन्दरम् की कोई पकड़ है। तीनों की लहर खो गई हैं। यह निष्क्रिय समाधि है। रमण से यात्रा शुरू होती है मुक्ति की। कृष्णमूर्ति ठीक विपरीत हैं रमण से। चौथी जगह खड़े हैं लेकिन विपरीत हैं। रमण में तीनों खो गये हैं, कृष्णमूर्ति में तीनों एक हैं, सजग हैं। तीनों समतुल हैं। तीनों की शक्ति बराबर एक है और तीनों एक से प्रगट हैं। तो अरविन्द को तो कविता लिखनी पड़ती है, कृष्णमूर्ति जो बोल रहे हैं वह कविता है; अलग से लिखनी नहीं पड़ती। कृष्णमूर्ति का होना ही कविता है। अरविन्द का तो कोई क्षण काव्य का होगा, कृष्णमूर्ति के लिए पूरा अस्तित्व काव्य है। गांधी को संयम साधना पड़ता होगा, कृष्णमूर्ति के लिए वह साधना नहीं पड़ता है, वह उनकी छाया है। गांधी को अहिंसा लानी पड़ती है, कृष्णमूर्ति के लिए अहिंसा आती है। अरविन्द को सत्य को खोजना पड़ता है, कृष्णमूर्ति को सत्य ही खोजता हुआ आ गया है। तीनों समतुल हैं। एक ही शक्ति के हैं। लेकिन रमण और कृष्णमूर्ति में क्या फर्क है? दोनों एक ही द्वार पर खड़े हैं। एक निष्क्रिय समाधि को उपलब्ध हुआ है। क्योंकि तीनों के पार चला गया है। एक सक्रिय समाधि को उपलब्ध हुआ है क्योंकि तीनों के समन्वय को, सेंथेसिस को उपलब्ध हो गया है। दोनों में थोड़ा सा फर्क है। अन्दर का कोई फर्क नहीं है। लेकिन व्यक्तित्व का बुनियादी फर्क है। रमण की समाधि ऐसे है जैसे बूंद सागर में गिर जाय – बुन्द समानी समुन्द में। और कृष्णमूर्ति की समाधि ऐसी है जैसे बूंद में सागर गिर जाय – समुन्द समाना बुन्द में। परिणाम में तो एक ही घटना घट जाएगी। लेकिन दोनों के व्यक्तित्व भिन्न हैं। और कृष्णमूर्ति और रमण

मिनिमम क्वालिफिकेशन के हैं। अध्यात्म के द्वार पर न्यूनतम योग्यताएं हैं। अध्यात्म के द्वार पर न्यूनतम योग्यता कम से कम इतनी चाहिए जितनी रमण की या कृष्णमूर्ति की है। लेकिन यह न्यूनतम योग्यता है, मिनिमम क्वालिफिकेशन है।

रमण और कृष्णमूर्ति से भी महत्तर व्यक्तित्व हैं। जैसे बुद्ध, महावीर या क्राइस्ट। बुद्ध और महावीर और क्राइस्ट में रमण और कृष्णमूर्ति संयुक्त रूप से प्रकट हुए हैं, अलग अलग नहीं हैं। निष्क्रिय और सक्रिय समाधि एक साथ घटित हुई है। वह जो पोजेटिव और निगेटिव है एक साथ घटित हुआ है। महावीर में, बुद्ध में या क्राइस्ट में निषेध और विधेय दोनों एक साथ घटित हुए हैं। वे दोनों एक साथ हैं। कृष्णमूर्ति भी और रमण भी। महावीर जब बोल रहे हैं तब वे कृष्णमूर्ति जैसी भाषा बोलते हैं। और महावीर जब चुप हैं तब वे रमण जैसे चुप हैं। रमण मौन हैं, साइलेंट हैं। कृष्णमूर्ति मुखर हैं, प्रकट हैं। कृष्णमूर्ति में तेजी है, रमण में सब शान्ति है। अगर महावीर को बोलते हुए कोई देखे तो वे कृष्णमूर्ति जैसे होंगे। और महावीर को चुप देखे तो वे फिर रमण जैसे होंगे। बुद्ध और क्राइस्ट भी ऐसे ही व्यक्तित्व हैं। एक तरफ क्राइस्ट इतने शान्त हैं कि सूली लटकाये जा रहे हैं तो भी वे परमात्मा से कह रहे हैं कि इन्हें माफ कर देना; क्योंकि इन्हें पता नहीं है कि ये क्या कर रहे हैं। यह रमण की हालत है। और यही क्राइस्ट चर्च में कोड़ा लेकर चला गया है और सूदखोरों को कोड़े मारकर उनके तख्ते उलट दिये हैं और उनको घसीट के मन्दिर के बाहर निकाल दिया है। वह कृष्णमूर्ति के रूप में हैं। मुझे कोई कहता है कि कृष्णमूर्ति इतने चिल्ला के और इतने गुस्से में क्यों बोलते हैं? जहां सिर्फ सक्रिय समाधि होगी वहां ऐसी घटना घटेगी। मुझे कोई कहता है कि रमण चुप क्यों बैठे रहते हैं? लोग पूछने जाते हैं और वे चुप ही बैठे रहते हैं। तो मैं उनसे कहता हूं कि निष्क्रिय समाधि ऐसी ही होगी। वह चुप होकर ही उत्तर दे रहे हैं। बुद्ध और महावीर और जीसस में ये दोनों घटनाएं एक साथ हैं। बुद्ध और महावीर और जीसस के पास और भी पूर्णतर व्यक्तित्व हैं। लेकिन बुद्ध और महावीर और जीसस से भी पूर्णतर व्यक्तित्व की सम्भावनाएं हैं और वैसा व्यक्तित्व श्रीकृष्ण के पास है।

बुद्ध, महावीर और जीसस में दोनों चीजों के लिए अलग अलग क्षण हैं। जब वे निष्क्रिय होते हैं तब वे अलग मालूम पड़ते हैं, जब वे सक्रिय होते हैं तब वे अलग मालूम पड़ते हैं। लेकिन आज तक ईसाई इस बात को हल

न कर पाये कि जो जीसस कोड़ा मार सकता है, वह जीसस सूली पर चुपचाप कैसे लटक सकता है! इन दोनों बातों का टाइम अलग अलग है, घड़ी अलग अलग है। इसलिए जीसस में बहुत कन्ट्राडिक्शन्स मालूम पड़ते हैं। बुद्ध में भी, महावीर में भी। कृष्ण का व्यक्तित्व और भी पूर्णतर है। वहां यह कंट्राडिक्शन ही नहीं है। वहां वे दोनों एक साथ हैं। उनके ओठ पर बांसुरी और उनकी आंख में क्रोध एक साथ है। उनका वचन कि युद्ध में नही उतरूंगा और उनका वचन तोड़ देना और युद्ध में उतर जाना एक साथ है। उनकी यह बात कि करुणा भी धर्म है और उनकी यह बात कि युद्ध में लड़ना भी धर्म है—एक साथ है। कृष्ण के व्यक्तित्व में ऐसे अलग खण्ड बांटने मुश्किल हैं। वहां निष्क्रिय और सक्रिय एक साथ घटित हुआ है। वहां निष्क्रिय और सक्रिय का भेद भी गिर गया है। कृष्ण आध्यात्मिक प्रवेश की मैक्ज़िमम क्वालिफिकेशन हैं। वह आखिरी, अधिकतम योग्यता है। इसका मतलब यह नहीं है कि रमण या कृष्णमूर्ति जिस मोक्ष में प्रवेश होंगे वह कुछ न्यून क्षमता का होगा। न, इसका यह भी मतलब नहीं है कि बुद्ध और महावीर जिस मुक्ति में जायेंगे उसका आनन्द कृष्ण की मुक्ति से कम होगा। इसका यह मतलब नहीं है कि इन दोनों में कोई छोटा-बड़ा है। इसका कुल मतलब यह है कि तीनों के व्यक्तित्व में भेद हैं। जहां ये पहुंचते हैं वह तो एक ही जगह है। लेकिन इन तीनों की पर्सनल्टीज में बुनियादी फर्क है। रमण और कृष्ण से सत्यं, शिवं, सुन्दरम् होना शुरू हो जाता है।

रमण और कृष्णमूर्ति के नीचे तीन तल हैं। जहां कोई शिव को पकड़कर बैठ गया है, जहां कोई सुन्दर को पकड़कर बैठ गया है, जहां कोई सत्य को पकड़कर बैठ गया है और हम सब तो उन तीनों तल के बाहर ही खड़े रह जाते हैं। जहां न हमने शिव को पकड़ा है, न हमने सत्य को पकड़ा है, न हमने सुन्दर को पकड़ा है। उन तीनों की हमारे जीवन में कोई गति नहीं है। एक अर्थ में जबतक हम पहली सीढ़ी पर न खड़े हों तबतक हम मनुष्य होने के अधिकारी नहीं होते। गांधी जी के साथ मनुष्यता शुरू होती है, अरविन्द के साथ मनुष्यता पूरी होती है। रमण और कृष्णमूर्ति के साथ अति मानव शुरू होता है। कृष्ण के साथ अति मनुष्यता का अन्त होता है। हम कहां हैं? हम पशु नहीं हैं, इतना पक्का है। हम आदमी हैं, इसमें सन्देह है। एक बात तय है कि हम जानवर नहीं हैं। दूसरी बात इतनी तय नहीं है कि हम आदमी हैं। क्योंकि जानवर न होना केवल निषेध है। आदमी होना एक

विधायक उपलब्धि है, एक पाजेटिव अचीवमेन्ट है। हम जानवर नहीं हैं प्रकृति वहां तक छोड़ देती है और आदमी होने का अवसर देती है कि हम आदमी हो सकें। प्रकृति हमें आदमी की तरह पैदा नहीं करती। अगर प्रकृति हमें आदमी की तरह पैदा कर दे तो फिर हम आदमी कभी भी न हो सकेंगे। क्योंकि आदमी होने का पहला कृत्य चुनाव है। अगर प्रकृति हमें चुनाव का मौका न दे तो फिर हम जानवर ही होंगे। आदमी और जानवर में जो फर्क है वह एक ही है कि जानवर के पास कोई च्वाइस, कोई चुनाव नहीं है। उसके ऊपर कोई चुनाव नहीं है। कुत्ता पूरा कुत्ता पैदा होता है और आप ऐसा नहीं कह सकते कि यह कुत्ता उस कुत्ते से थोड़ा कम कुत्ता है। ऐसा कहेंगे तो आप पागल मालूम पड़ेंगे। सब कुत्ते बराबर कुत्ते होते हैं। दुबले-पतले हो सकते हैं, मोटे हो सकते हैं, लेकिन कुत्तापन बिल्कुल बराबर होगा। लेकिन आप एक आदमी के सम्बन्ध में बिल्कुल कह सकते हैं कि यह आदमी थोड़ा कम आदमी है, यह आदमी थोड़ा ज्यादा आदमी है। आदमियत जन्म से नहीं मिलती इसलिए यह सम्भव है। आदमियत हमारा सृजन है, आदमियत हम निर्मित करते हैं, आदमियत हमारी उपलब्धि और खोज है। कहें कि आदमियत हमारी डिस्कवरी है, आदमियत हमारा आविष्कार है। लेकिन हम सारे लोग जन्म के साथ यह मान लेते हैं और बड़ी भूल हो जाती है कि हम आदमी हैं। जन्म के साथ कोई भी आदमी नहीं होता। किसी मां-बाप की हैसियत आदमी पैदा करने की नहीं है। सिर्फ आदमी होने का अवसर पैदा किया जाता है। जस्ट ऐन अपरचुनिटी। जबकि मां-बाप से एक बच्चा पैदा होता है तो यह आदमी पैदा होने की सम्भावना पैदा हो रही है। यह आदमी पैदा नहीं हो रहा है। यह सिर्फ पोटेंशियल ह्यूमन बीइंग है। यह चाहे तो आदमी हो सकता है और चाहे तो रुक सकता है। मजा यह है कि यदि आदमी चाहे तो आदमी हो सकता है, यदि आदमी चाहे तो आदमी के पार हो सकता है, यदि आदमी चाहे तो पशु हो सकता है, यदि आदमी चाहे तो पशु से भी नीचे हो सकता है। अगर हम ठीक से समझें तो आदमियत का मतलब है च्वायस, आदमियत का मतलब है चुनाव की अनन्त क्षमता। नीचे पशुओं में कोई चुनाव नहीं है। और अरविन्द के बाद रमण से जो दुनिया शुरू होती है वहां भी कोई चुनाव नहीं है। पशु जैसे हैं वैसे होने को मजबूर हैं। अगर एक कुत्ता भूकता है तो यह उसका चुनाव नहीं है। और अगर एक शेर हमला करता है और हिंसा करता है तो यह उसका चुनाव नहीं है। इसलिए किसी शेर को आप

हिंसक नहीं कह सकते। क्योंकि जिसकी अहिंसक होने की कोई क्षमता ही नहीं है उसको हिंसक कहने का क्या अर्थ है। इसलिए आप किसी जानवर पर अनैतिक होने का जुर्म नहीं लगा सकते और अपराधी नहीं ठहरा सकते। इसलिए हम सात साल तक के बच्चे को अपराधी ठहराने का विचार नहीं करते। क्योंकि हम मानते हैं कि अभी वह आदमी कहां है। अभी जानवर चल रहा है। इसलिए बच्चे को हम जानवर के साथ गिनते हैं। अभी चुनाव शुरू नहीं हुआ है। लेकिन सात साल तक न हो, यह तो समझ में आता है फिर सत्तर साल तक न हो, तो समझ में आना बहुत मुश्किल हो जाता है। कुछ बिना चुनाव किये ही जी लेते हैं। प्रकृति उन्हें जैसा पैदा करती है वैसा जी लेते हैं।

चुनाव मनुष्यता का निर्णायक कदम है। कहां से चुनाव करें? शिव से चुनाव करें? सुन्दर से चुनाव करें? सत्य से चुनाव करें? कहां से चुनाव करें? साधारणतः दो तरह की बातें रही हैं। एक तो वे लोग हैं, जो कहते हैं, पहले आचरण बदलो फिर और कुछ गहरा बदला जा सकेगा। मैं उनसे राजी नहीं हूं। मेरी अपनी समझ यह है कि आचरण को अगर बदलने से शुरू किया तो पाखण्ड का पूरा डर है, हिपोक्रेसी का पूरा डर है। इसलिए मैं कहता हूं, स्वयं को समझने से शुरू करो। सत्य से शुरू करो, गांधी से शुरू मत करो। अरविन्द से शुरू करो। पहले स्वयं को समझने की चेष्टा से शुरू करो और जिस दिन स्वयं को जान सको उस दिन स्वयं के बाहर जो फैला हुआ विराट है, उसे जानने की चेष्टा को फैलाओ तो सौन्दर्य जीवन में उठेगा। और जिस दिन इस विराट को जानने की बात भी पूरी हो जाय उस दिन इस विराट के साथ कैसे व्यवहार करना, उसका विस्तार करो तो शिवं ही फैलेगा। सत्य से शुरू करो, सौन्दर्य पर फैलाओ, शिवं पर पूरा करो। साधारणतः आजतक दुनिया में जितने धर्म हैं वे कहते हैं शिवं से शुरू करो और सत्यं की यात्रा करो। वे कहते हैं आचरण से शुरू करो और आत्मा की तरफ जाओ। मैं आपसे कहता हूं, आत्मा से शुरू करो और आचरण को आने दो। असल में जो आचरण से शुरू करेगा वह हो सकता है जिन्दगी बहुत फिजूल के श्रम में गंवा दे। गांधीजी ने जिन्दगी भर ब्रह्मचर्य का प्रयोग किया लेकिन अन्तिम क्षण तक तय न कर पाये कि ब्रह्मचर्य उपलब्ध हुआ है या नहीं हुआ है। आचरण से शुरू करने की बड़ी तकलीफ है। महावीर को कभी शक नहीं हुआ, बुद्ध को कभी शक नहीं हुआ, गांधी को शक हुआ। उसका कारण है, आचरण से ही जीवन को साधा है। बाहर से ही जीवन को साधा है और

भीतर की तरफ बाहर से साधकर गये हैं। मकान के बाहर से साधना शुरू की है और मकान के बाहर की दीवालों को संवारना शुरू किया है। बाहर की दीवालें, बाहर की परिधि जीवन की कितनी ही शुभ हो जायं तो भी जरूरी नहीं है कि भीतर जो जी रहा है वह शुभ होगा। लेकिन अगर भीतर जो जी रहा है वह सत्य हो जाय तो जो बाहर है वह अनिवार्य रूप से शुभ हो जाता है।

सारी दुनिया में पांच-दस हजार वर्षों के धर्मों ने आदमी में कुछ पैदा न कर पाया। उसका कारण है। क्योंकि उनकी प्रक्रिया उल्टी है। आचरण से शुरू करते हैं और आत्मा तक जाने की बात कहते हैं। आदमी जिन्दगी भर आचरण को संभालने में नष्ट हो जाता है और कभी तय नहीं कर पाता कि आत्मा को संभालने का क्षण आया है। अगर मनुष्य जाति को सच में धार्मिक बनाना है तो भीतर से शुरू करनी पड़ेगी यात्रा और बाहर की तरफ फैलना पड़ेगा। मजे की बात यह है कि भीतर से यात्रा करना सरलतम है। क्योंकि जिसे हम बाहर साध-साध के भी साध नहीं पाते वह भीतर साधना से अपने आप आ जाता है। जैसे कोई आदमी गेहूं बोता है तो भूसा अपने आप पैदा होता है, भूसे को अलग से पैदा नहीं करना पड़ता है। लेकिन कोई यह सोचे कि जब गेहूं के साथ भूसा पैदा हो जाता है तो हम भूसा बो दें तो गेहूं भी पैदा हो जाएगा। तो सिर्फ भूसा सड़ जाएगा, गेहूं पैदा नहीं होगा। भूसे के साथ गेहूं पैदा नहीं होता। भूसा बहुत बाहरी चीज है, गेहूं बहुत भीतरी चीज है। असल में भूसा गेहूं के लिए पैदा होता है, उसकी रक्षा के लिए पैदा है। अगर गेहूं नहीं है तो भूसे के पैदा होने की कोई जरूरत नहीं होती। जब भीतर सत्य पैदा होता है तो उसके आसपास सौन्दर्य और शिव अपने आप पैदा होते हैं, रक्षा के लिए। असल में जब भीतर सत्य का दिया जल जाता है तो अपने आप शिव का आचरण निर्मित होता है। क्योंकि सत्य के दिये को अशिव आचरण में बचाया नहीं जा सकता। जब भीतर सत्य पैदा हो जाता है तब चारों तरफ जीवन में सौन्दर्य की आभा फैल जाती है-- वैसे ही जैसे दिया जलता है तो घर के बाहर रोशनी फैलने लगती है। अगर इस कमरे में दिया जला हो तो खिड़कियों के बाहर रोशनी फैलने लगेगी। लेकिन आप कहीं सोचें कि खिड़कियों के बाहर पहले रोशनी फैले और फिर भीतर दिया जलायेंगे, इस ख्याल में पड़ गये तो बहुत खतरा है। हो सकता है कोई नकली रोशनी लाकर बाहर चिपका ले तो बात अलग है। लेकिन नकली रोशनी अंधेरे से भी बदतर होती

है। नकली फूल असली फूल से भी बुरा होगा, क्योंकि असली फूल न हो तो पीड़ा होती है असली फूल के खोज की, और नकली फूल हाथ में हों तो यह भी ख्याल भूल जाता है कि असली फूल को खोजना है। नकली फूल दूसरे को धोखा दें, इससे बहुत हर्जा नहीं है, खुद को भी धोखा दे देता है।

मनुष्य जाति का अबतक का धर्म शिव से शुरू होता था, सत्य की यात्रा पर निकलता था इसलिए हम बहुत लोगों को न तो शिव बना पाये, न सुन्दर बना पाये, न सत्य दे पाये। भविष्य में अगर धर्म की कोई संभावना है तो इस प्रक्रिया को पूरा उलट देना पड़ेगा। सत्यं से शुरू करें, शिवं और सुंदरम् उनके पीछे आएं। लेकिन ध्यान रहे, सत्यं भी उपलब्ध हो जाय, शिवं भी मिल जाय, सुंदरम् भी मिल जाय तो भी हम सिर्फ मनुष्य हो पाते हैं, पूरे मनुष्य। मनुष्य होना काफी नहीं है, जरूरी है। काफी नहीं है, नेसेसरी है। इनफ नहीं है, पर्याप्त नहीं है। जैसे ही हम मनुष्य होते हैं, वैसे ही एक नयी यात्रा का द्वार खुलता है जो मनुष्य के भी पार ले जाता है। और जब कोई मनुष्यता के पार जाता है तभी पहली दफे जीवन में उस आनंद को उपलब्ध होता है जो अस्तित्व का आनंद है, उस स्वतंत्रता को उपलब्ध होता है जो अस्तित्व की स्वतंत्रता है, उस अमृत को उपलब्ध होता है जो अस्तित्व का अमृतत्व है।

इन तीनों के बाहर जाना है, लेकिन हम तो इन तीनों में भी नहीं गये। इन तीनों में जाना है, ताकि इन तीनों के पार जाया जा सके। सत्यं, शिवं, सुंदरम् यात्रा है, अंत नहीं है। मार्ग है, मंजिल नहीं है। साधन है, साध्य नहीं है। सत्यं, शिवं, सुंदरम् का यह त्रय प्रक्रिया है, और सच्चिदानंद का त्रय उपलब्धि है। उसकी थोड़ी थोड़ी झलक मिलनी शुरू होती है। जो अपने जीवन में शिव को उतार लेता है, जो अपने जीवन में सत्य को उतार लेता है उसके जीवन में सुख आना शुरू हो जाता है। लेकिन जहां तक सुख है वहां तक दुख की संभावनाएं सदा मौजूद रहती हैं। जो सीमा के पार चला जाता है वहां आनंद आना शुरू होगा। इसलिए न सुख रहा, न दुख रहा। इसलिए आनंद के विपरीत कोई भी शब्द नहीं है, आनंद अकेला शब्द है मनुष्य की भाषा में जिसका कंट्राडेक्टरी नहीं, जिसका उल्टा नहीं है। सुख का उल्टा दुख है और शांति का उल्टा अशांति है और अंधेरे का उजाला है और जीवन का मृत्यु है। आनन्द का उल्टा शब्द नहीं है। आनंद अकेला शब्द है जिसके विपरीत कोई शब्द नहीं है। जैसे ही हम सुख और दुख के पार होते हैं, आनंद में प्रवेश होता है। मुक्ति का द्वार तो रमण और कृष्णमूर्ति से खुल जाता है। आप कहेंगे, जब द्वार यहीं खुल

जाता है, तो बुद्ध और महावीर और कृष्ण तक जाने की क्या जरूरत है ? अलग अलग व्यक्ति के लिए अलग अलग बात निर्भर करेगी। मैं बंबई आता हूं तो बोरीवली उतर सकता हूं। वह भी बंबई का एक स्टेशन है। दादर भी उतर सकता हूं, वह भी बंबई का स्टेशन है। सेंट्रल भी उतर सकता हूं वह भी बंबई का स्टेशन है लेकिन वह टर्मिनस है; और एक सिर्फ प्रारंभ है और एक अंत है। कृष्ण टर्मिनस पर उतरते हैं जहां ट्रेन ही खत्म हो जाती है। उसके आगे फिर यात्रा ही नहीं। रमण और कृष्णमूर्ति बोरीवली उतर जाते हैं, महावीर और बुद्ध और जीसस दादर उतर जाते हैं। अपनी पसंद की बात है। लेकिन रमण और कृष्णमूर्ति तक तो प्रत्येक को पहुंचना ही चाहिए। उसके आगे बिल्कुल पसंद की बात है कि कौन कहां उतरता है। वह बिल्कुल व्यक्तिगत झुकाव है। लेकिन बहुत दूर हैं रमण और कृष्णमूर्ति ! गांधी होना ही कितना मुश्किल मालूम पड़ता है ! कितने लोग बेचारे चर्खा चला चला के गांधी होने की कोशिश करते हैं। चर्खे ही चल पाते हैं और चर्खा परेशान हो जाता है और वे गांधी नहीं हो पाते। रवींद्रनाथ होना ही कितना मुश्किल है ! कितनी तुकबंदी चलती है, कितनी कविताएं रची जाती हैं, लेकिन काव्य का जन्म नहीं हो पाता। कितने लोग आंख बंद करके ध्यान करते हैं, पूजा करते हैं, उपवास करते हैं। अरविंद होना भी मुश्किल है। लेकिन अगर रवींद्र रवींद्र हो सकते हैं, अरविंद अरविंद हो सकते हैं, तो कारण नहीं है कि कोई भी दूसरा व्यक्ति क्यों नहीं हो सकता है। मनुष्य का बीज समान है, उसकी संभावनाएं समान हैं, उसकी पोटंशियलिटी समान है। एक बार संकल्प हो तो परिणाम आने शुरू हो जाते हैं।

एक छोटी-सी घटना और अपनी बात मैं पूरी करूं। एक घटना मैं पढ़ रहा था दो दिन पहले। अमरीका का एक फिल्म अभिनेता मरा। मरने के दस साल पहले उसने वसीयत की थी कि मुझे मेरे छोटे से गांव में ही दफनाया जाय। लोग महात्माओं की वसीयत नहीं मानते, अभिनेताओं की वसीयत कौन मानेगा ? जब वह मरा तो अपने गांव से दो हजार मील दूर मरा था। कौन फिक्र करता था ? मरने के बाद महात्माओं की कोई फिक्र नहीं करता तो अभिनेताओं की कौन करेगा ? उसको लोगों ने बड़े ताबूत में बन्द करके दफना दिया। मरते क्षण भी उसने कहा कि देखो, मुझे यहां मत दफना देना अगर मैं मर जाऊं। मैं आखिरी बात तुमसे कह दूं कि मुझे मेरे गांव पहुंचा देना जहां मैं पैदा हुआ था। उसी गांव में मुझे दफनाया जाय। वह मर गया, लोगों ने कहा, मरे हुए आदमी की क्या बात है। उन्होंने ताबूत में बन्द करके उसे दफना दिया।

लेकिन रात एक भयंकर तूफान आया, उसकी कब्र उखड़ गयी। उसकी कब्र के पास खड़ा हुआ दरख्त गिर गया और उसका ताबूत समुद्र में बह गया और दो हजार मील ताबूत ने समुद्र की यात्रा की और अपने गांव के किनारे जाकर लग गया। जब लोगों ने ताबूत खोला तो सारा गांव एकत्र हो गया। वह उनके गांव का बेटा था जो सारी दुनिया में जगजाहिर हो गया था। उन्होंने उसे उसी जगह दफना दिया जहां वह पैदा हुआ था। उस अभिनेता की जीवन कथा मैं पढ़ रहा था। उस लेखक ने लिखा है कि क्या यह उसके संकल्प का परिणाम हो सकता है? यह उसने प्रश्न उठाया है।

अगर मैं आदमियों की तरफ देखूं तो शक होता है कि संकल्प का परिणाम कैसे हो सकता है? आदमी जिन्दगी में जहां पहुंचना चाहता है वह जिन्दा रह के नहीं पहुंच पाता। यह आदमी मर के जहां पहुंचना चाहता था कैसे पहुंच पायेगा? लेकिन दो हजार मील की यह लंबी यात्रा और अपने गांव पर लग जाना और उसी रात तूफान का आना; ऐसा भी नहीं मालूम पड़ता कि संकल्प से बिल्कुल हीन हो। संकल्प इसमें रहा होगा। संकल्प की इतनी शक्ति है कि मुर्दा भी यात्रा कर सकता है तो क्या हम जिन्दा लोग यात्रा नहीं कर सकते? लेकिन हमने कभी यात्रा ही नहीं करनी चाही, हमने कभी अपनी इच्छा को ही नहीं पुकारा है, हमने कभी सोचा ही नहीं कि हम भी कुछ हो सकते हैं या हम भी कुछ होने को पैदा हुए हैं या हमारे होने का भी कोई गहरा प्रयोजन है। कोई गहरा बीज हम में छिपा है जो फूटे और वृक्ष बने और फूलों को उपलब्ध हो, हमें वह ख्याल ही नहीं है।

एक छोटी-सी चर्चा से यह थोड़ा सा ख्याल मैं आपको देना चाहता हूं कि पहले तो जन्म को जीवन मत समझ लेना और पशु होने को मनुष्य होना न समझ लेना। मनुष्य की शकल में मनुष्य की उपलब्धि मत समझ लेना। मनुष्य होने के लिए श्रम करना पड़ेगा, सृजन करना पड़ेगा, यात्रा करनी पड़ेगी और मनुष्य होने के लिए शिवं से शुरू मत कर देना अन्यथा लंबी यात्रा हो जायेगी और जन्मों का भटकाव हो जायगा। मनुष्य की यात्रा शुरू करनी हो तो सत्यं से शुरू करना और शिवं तक फैलाना और अंतिम बात कि सत्यं भी मिल जाय, शिवं भी मिल जाय, सुन्दरम् भी मिल जाय तो भी रुक मत जाना। यह भी पड़ाव नहीं है। मनुष्य के ऊपर जाना है। मनुष्य होना जरूरी है, लेकिन पर्याप्त नहीं है। मनुष्य के ऊपर उठकर ही मनुष्य का पूरा फूल खिलता और विकसित होता है। ●

वार्तालाप

पूना : दिनांक

२० अक्टूबर ७०

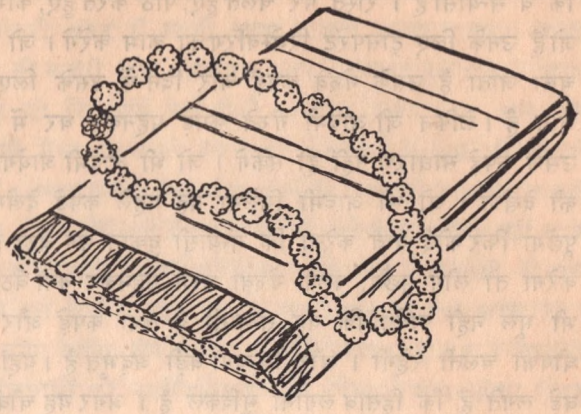

संकलन : माणिक बाफना

संन्यास

नई दिशा : नया बोध

आपको ध्यान रहे, अपने संन्यास का स्मरण रखकर ही जीना है ताकि आप अगर क्रोध भी करेंगे तो न केवल आपको अखरेगा, दूसरा भी आपसे कहेगा कि आप कैसे संन्यासी हैं। साथ ही साथ आपका नाम भी बदल दिया जायगा ताकि अन्य पुराने नाम से उनकी जो आइडिन्टिटी, उनका जो तादात्म्य था वह टूट जाय। अब तक उन्होंने अपने व्यक्तित्व को जिससे बनाया था उसका केन्द्र उनका नाम है। उसके आसपास उन्होंने एक दुनिया रचायी, उसको बिखेर देना है ताकि उनका पुनर्जन्म हो जाय। वह नये नाम से शुरू करें यात्रा और इस नये नाम के आसपास अब वह संन्यासी की भांति कुछ इकट्ठा करेंगे। अब तक उन्होंने जिस नाम के आसपास इकट्ठा किया था वह गृहस्थ की तरह इकट्ठा किया था। तो एक तो उनकी पुरानी आइडिंटिटी तोड़कर नाम बदल देना है। दूसरे उनके कपड़े बदल देना है, ताकि समाज के लिए उनकी घोषणा हो जाय कि वे संन्यासी हो गये और चौबीस घंटे उनके कपड़े उनको भी याद दिलाते रहेंगे

कि वे संन्यासी हैं। रास्ते पर चलते हुए, पाठ करते हुए, काम करते हुए वे कपड़े जो हैं उनके लिए ट्रांसपरेंट रिमेम्बरिंग का काम करेंगे। जो आदमी घर छोड़कर चला जाता है उसके गेरुवे कपड़े चार दिन में उसके लिए साधारण कपड़े हो जाते हैं। लेकिन जो आदमी गेरुवे कपड़े पहनकर घर में रहेगा, जिन्दगी भर उसके कपड़े साधारण नहीं हो सकेंगे। जो भी आदमी आयेगा वह फौरन इस कपड़े को देखेगा। जो भी आदमी मिलेगा वह पहले कपड़े देखेगा, कपड़े के संबंध में पूछेगा फिर कोई बात करेगा कि संन्यासी दुकान पर बैठा है। दफ्तर में काम करेगा तो लोग पूछेंगे, क्लर्क गेरुवा वस्त्र पहनकर क्यों बैठा हुआ है? वह कहीं भी भूल नहीं पायेगा कि वह संन्यासी है तथा कपड़े और उसके बीच निरंतर घोषणा चलती रहेगी। और जिन्दगी बड़ी अद्‌भुत है। यहां छोटे से फर्क इतने बड़े लगते हैं कि हिसाब लगाना मुश्किल है। अगर यह चौबीस घंटे स्मरण बना रहे कि मैं संन्यासी हूं तो यह स्मरण ही आपके व्यक्तित्व की बहुत सी चीजों को बदल देगा जिन्हें आप लाख कोशिश करके नहीं बदल सकते। कल जो आप करते थे, आज करने में आपको होश रखना पड़ेगा। कल जैसा आप बोलते थे वैसा बोलने में आज होश रखना पड़ेगा। यह होश आपके भीतर फर्क लाना शुरू कर देगा। इसलिए ऊपरी और कोई नियम मैं थोपना नहीं चाहता। आपका विवेक ही आपका नियम होगा। सिर्फ आपको स्मरण भर बनाये रखना चाहता हूं कि आप संन्यासी हैं। बस इतना ही मैं चाहता हूं कि वह स्मृति आपसे छूटे नहीं।

संन्यासी के कपड़े का संबंध धार्मिक है और धार्मिक संबंध शाश्वत है। उसकी बदलाहट का कोई उपाय ही नहीं। फिर अगर संन्यास को भी हम अलग तोड़ दें जैसा पीछे हुआ तो भूल जायगा, क्योंकि हम कितनी देर याद रखेंगे। तो मैं चाहता हूं, विपरीत सिचुएशन अगर चौबीस घंटे मौजूद रहे तो ही नहीं भूलेगा, अगर उल्टी परिस्थिति मौजूद रहे तो नहीं भूलेगा। परिस्थिति अनुकूल हो जाय तो भूल जायेगा। एक आश्रम में संन्यासी को बिठाल दें, थोड़े दिन में वह साधारण हो जाने वाला है। लेकिन एक दुकान पर बिठाल दें तो हमने चौबीस घंटे का एक तनाव पैदा किया है। आज जो ग्राहक आयेगा कल नया ग्राहक आयेगा, वह भी कहेगा कि आप संन्यासी होकर दुकान पर बैठे हैं? यह पूछना बन्द होने वाला ही नहीं है। इसका उपाय नहीं बन्द करने का, निकलेंगे तो, उठेंगे तो, बैठेंगे तो। और एक दफा अगर चार छः महीने, आठ महीने, साल भर भी यह कांस्टैंट रिमेंबरिंग रह जाय तो आप में फिर फर्क हो ही जायेगा। फिर कपड़े का तो कोई मूल्य भी नहीं है। उनको छोड़ भी दें तो कोई हर्जा नहीं है। यह साल भर

की निरंतर स्मृति आपको तो बदल ही जायेगी, बदल ही जाने वाली है। फिर आपकी जिन्दगी में कोई भीतरी अंतर मैं अपनी तरफ से नहीं करना चाहता। अपनी तरफ से मैं बिल्कुल ही बाहरी और छोटा सा अंतर करवाता हूं। भीतरी अंतर आप पर छोड़ता हूं जो कि सिर्फ चेन होगी। भीतर अंतर रोज होते चले जायेंगे। न मैं आपकी सेक्स लाइफ को कहता हूं कि बदलना है, कुछ भी बदलने को नहीं कहता हूं। बहुत ऊपरी बदलाहट करनी है। भीतरी बदलाहट आपकी स्मृति से आनी शुरू होगी और वह जैसे जैसे आयेगी बदलते जाना है। नहीं बदले तो उसकी चिन्ता नहीं लेना है। ध्यान पर ताकत लगानी है। संन्यासी के साथ दूसरी जो एक ही शर्त है मेरी, वह यह कि वह ध्यान पर श्रम करता रहे। और तुम्हारे पास समय ज्यादा बच सकेगा तुम्हारी घोषणा के बाद। तुम्हारी सामाजिक औपचारिकताओं की फार्मलिटीज का जो ढेर वक्त जाया होता है वह बच सकेगा। किसी के घर शादी है, तुम नहीं आओगे तो चल सकेगा। फिजूल के जलसे हैं, तुम नहीं जाओगे तो चलेगा। लोग समझते हैं, वह आदमी संन्यासी है, उसको छोड़ देना चाहिए। तुम्हारे घर भी फिजूल की बातचीत चलनी बन्द हो जायेगी। तुम्हारे आसपास फिजूल का कचरा बन्द हो जायगा इकट्ठा होने से। तुम्हारे पास समय भी बच सकेगा और उस समय का तुम उपयोग कर सकोगे। तो ध्यान पर शक्ति लगानी है और बाकी सारे परिवर्तन अपने से होने दें।

एक तो यह बड़ा वर्ग होगा संन्यासियों का जिसको मैं कहता हूं कि व्यापक हो। इतना व्यापक हो कि मुल्क में लाखों संन्यासी हों। इनसे हम पूरे मुल्क की हवा और पूरे मुल्क का वातावरण बदलने की कोशिश कर डालेंगे। दूसरा तुम्हें एक जो स्मरण रहेगा कि तुम संन्यासी हो, इसके साथ ही तुम्हारा दूसरा स्मरण तुम्हें जोड़ रखना है कि अब तुम जो भी कर रहे हो वह परमात्मा के एक उपकरण, एक इंस्ट्रूमेंट की तरह कर रहे हो। अब तुम कर्ता नहीं हो। अब तुम अगर रोटी कमाना चाह रहे हो तो परमात्मा के लिए ही। अगर घर बना रहे हो तो वह भी परमात्मा के लिए, अगर दुकान चला रहे हो, तो वह भी परमात्मा के लिए। अब तुम्हारी अपनी कोई इगो सेंटर्ड व्यवस्था नहीं है, अपने लिए कुछ करने का कारण नहीं है। अपने लिए तो तुम छूट गये लेकिन तुम्हारी जिम्मेदारियां हैं, उनके लिए तुम परमात्मा के निमित्त सब किये चले जा रहे हो।

यह भाव कि मैं कर्ता नहीं हूं सिर्फ साक्षी हूं, तुम्हारी जिन्दगी को आमूल बदल देगा, जहां तुम हो वहीं बदल होगी। और तुम्हारी बदलाहट आसपास संक्रामक हो जायगी। अगर दूकानदार संन्यासी हो तो ग्राहक को भी छूता है, क्लर्क अगर

संन्यासी हो तो जो उसके पास काम करवाने गया है उसको भी छूता है। क्योंकि इसका सारा व्यवहार बदल जायेगा, इसका सारा ढंग बदल जायगा, इसकी सोचने की व्यवस्था बदल जायगी, इसका सारा रंग बदल जायेगा। सब कुछ बदलेगा। उस बदलाहट से दूसरों में भी बदलाहट आनी शुरू होगी, तो हमारी इस मुल्क की जिन्दगी में जितनी अनीति और जितना भ्रष्ट जीवन है उसके लिए हम आधार खोज सकेंगे। ये दिये बना सकेंगे जिनसे फर्क होग. और यह भी साफ हो सकेगा, जैसा कि लोगों के मन में हो गया है, कि अब अच्छा आदमी जी ही नहीं सकता। यह कितना गहरा बैठ गया है! अब बुरे होने के लिए रास्ता खोजना है। हमने तर्क अपने मन में बिठा लिये हैं कि अच्छा आदमी जी नहीं सकता। अच्छा आदमी तो मर ही जायेगा। तो मैं यह भी दिखाना चाहता हूं कि अच्छा आदमी नहीं, संन्यासी भी ठेठ इस जिन्दगी में जी सकता है। तो वह आधार जो हमारे मन में अनीति का कारण बन रहा है उसे गिराने का उपाय हो सकेगा। फिर कहा जा सकता है कि इस तरह के लोग पाखंडी हो सकते हैं, तो कुछ हर्जा नहीं। क्योंकि जो आदमी संन्यासी होकर पाखंडी है, वह संभव है पहले भी पाखंडी रहा हो। हम दुनिया का कोई नुकसान नहीं करते हैं उससे, लेकिन उसके पाखंडी होने में बाधा हम जरूर डालते हैं। वह इतनी आसानी से पाखंडी नहीं हो सकेगा जितनी आसानी से वह कल हो सकता था। और अगर होगा भी तो दुनिया का हम कोई नुकसान नहीं कर रहे हैं। वह आदमी पाखंडी था ही तो कोई दुनिया का अहित नहीं हो गया है। वह जितना पाखंडी था उतना ही होगा। फिर ऊपर से हम यह कोई पोजीशन नहीं थोप रहे हैं ताकि उस आदमी को धोखा करना पड़े। हम उसकी किसी तरह की जिन्दगी की भीतरी बातों को नहीं छू रहे हैं, छू ही नहीं रहे हैं। वह उसकी स्वतंत्रता ही होगी। हम उससे नहीं कह रहे हैं कि वह लोभ छोड़ दे। छूटता है तो वह उसकी स्वतंत्रता होगी। हम उससे नहीं कह रहे हैं कि वह काम छोड़ दे, वासना छोड़ दे। छूटता है तो वह उसकी भीतरी व्यवस्था होगी। इसलिए हम कभी उसे गिलटी बनाने की तरकीब नहीं कर रहे हैं, नहीं तो हमारा पुराना सारा संन्यासी अपराधी हो जाता। क्योंकि जो हमने उसको छोड़ने के लिए कहा है, नहीं छोड़ पाता तो या तो वह दिखावा करता है कि हम छोड़ दें, और नहीं छोड़ पाता है तो भीतर अपराधी होता है और या फिर वह पाखंडी हो जाता है कि कहता कुछ है, करता कुछ है। इस सबकी हम बाधा नहीं डालते हैं। तुम किसी के प्रति रिस्पोंसिबल नहीं हो।

जिस संन्यासी की मैं बात कर रहा हूं यह किसी का शिष्य नहीं है, मेरा शिष्य नहीं है। मैं ज्यादा से ज्यादा गवाह भर हूं कि मेरे सामने वह संन्यास के मार्ग पर गया। इससे ज्यादा मेरे प्रति उसका कोई उत्तरदायित्व नहीं है कि मैं उससे कल पूछ सकूं कि ऐसा तुमने क्यों किया ? वह अपने ही प्रति रिस्पोंसिबुल है। यह बिल्कुल इनर रिस्पोंसिबिलिटी है। इसमें किसी से कोई लेना–देना नहीं है। कल उसे लगता है कि नहीं, यह मेरे काम की बात नहीं है या मैं इसमें नहीं जा सकता हूं तो हम उसे रोक नहीं रहे हैं कि वह जीवन भर के लिए संन्यासी हो जाय। वह उसको छोड़ दे। जिस दिन छोड़ना है यह उसकी मौज होगी। इसको कोई बाधा डालता नहीं। हालां कि मैं मानता हूं कि एक दफा संन्यास में, इस स्थिति में गया आदमी वापस नहीं लौट सकता है। क्योंकि उसके साथ के जुड़े हुए आनन्द हैं, शांतियां हैं। वह उसको सतायेंगी और बुलायेंगी। एक तो बड़े व्यापक पैमाने पर तो यह, दूसरे कुछ लोग हो सकते हैं जिनके लिए घर का कोई अर्थ ही नहीं है। घर है ही नहीं। रिटायर वृद्ध लोग हो सकते हैं जिनके लिए घर और नाघर का कोई प्रयोजन नहीं है। अब जिन्दगी में होने न होने का कोई मतलब नहीं है उनका। कोई जिम्मेवारी नहीं है। किसी को उनके हटने से दुःख नहीं पहुंचता है। युवक हो सकते हैं ऐसे जिनके ऊपर कोई जिम्मेवारी नहीं है। ऐसे व्यक्तियों को बस मैं चाहता हूं कि अगर वह चाहें तो उनके लिए कुछ केन्द्र मुल्क में होंगे जहां वे संन्यासी की तरह उन आश्रमों में रहें। लेकिन वे आश्रम भी प्रोडेक्टिव होंगे, वे आश्रम भी नानप्रोडेक्टिव नहीं होंगे। ऐसा नहीं होगा कि समाज उन आश्रमों को पालेगा। उन आश्रमों की अपनी खेती होगी, अपना बगीचा होगा, अपनी छोटी-मोटी इण्डस्ट्री होगी और हर संन्यासी को वहां भी तीन घण्टे काम करना ही पड़ेगा, जो काम वह कर सकता है। अगर वृद्ध है तो तीन घण्टे संन्यास के स्कूल में पढ़ा दे। डाक्टर है तो तीन घण्टे आश्रम के अस्पताल में काम करे। चमार है तो तीन घण्टे जूते साफ कर दे। जो भी कर सकता है वह। और यह कम्युन लिविंग होगी। इसमें जो डाक्टर काम करेगा और जो जूते की पोलिश का काम करेगा कोई अंतर नहीं होगा। इसमें कोई ऊंचा–नीचा नहीं होगा। वह यह कर सकता है, वह यह करता है। दोनों को बराबर सुविधाएं, बराबर इन्तजाम मिलेगा। आश्रम में कोई पैसे का लेन-देन नहीं होगा। आश्रम के किसी संन्यासी को कोई पैसा नहीं देगा। खाना, रहना, कपड़ा वह सारा इन्तजाम मिलेगा। उस संन्यासी को बाहर किसी काम के लिए भेजा जाएगा तो उसकी व्यवस्था होगी। यह सबके लिए समान

होगा और तीन घण्टे प्रत्येक को काम करना पड़ेगा ताकि आश्रम किसी पर निर्भर न हो। धीरे धीरे ये इंडेपेन्डेन्ट युनिट हो जाएंगे। ये युनिट दो तरह के काम करेंगे। एक तो जो संन्यासी गृहस्थ जीवन में संन्यासी होते हैं उनके लिए ट्रेनिंग की जगह हो जाएगी कि वह कभी महीने पन्द्रह दिन के लिए वहां आकर रह जायं, वापस लौट जायं। ध्यान के लिए आ जायं और वापस लौट जायं। और दूसरे संन्यासी दूसरा काम करेंगे। हर संन्यासी को जिसे तीन घण्टा काम करना जरूरी होगा ऐसे हर वर्ष में तीन महीने उसे ध्यान करवाने के लिए बाहर जाना जरूरी होगा, कि वे जाकर गांव गांव लोगों को ध्यान करवायें और ये संन्यासी खबर भी दे आयें और इस संन्यास के लिये कुछ लोग उत्सुक होते हैं उनको उत्सुक भी कर आयें। दूसरा वर्ग संन्यासियों का यह होगा। और तीसरा एक वर्ग संन्यासियों का होगा। वे लोग, जो घर में भी संन्यास लेने की हिम्मत नहीं जुटा सकते और वे लोग जो आश्रम में आने की स्थिति में ही नहीं हैं; ऐसे लोगों के लिए जितने समय के लिए उनको संन्यास लेना हो उतने समय के लिए वे आश्रम में आयें सन्यास ले लें– महीने भर के लिए, दो महीने भर के लिए वे संन्यास ले लें। महीने भर के बाद वे अपने घर अपने कपड़े लेकर चले जाएंगे। महीने भर वे संन्यासी की तरह रहेंगे, महीने भर के बाद वे साधारण कपड़े में लौट जाएंगे।

इरादा मेरा यह है कि अधिकतम लोगों के लिए सर्वाधिक संन्यास सुलभ हो सके। यानी ऐसा न हो कि संन्यास इतना सख्त हो, उसकी शर्तें इतनी ज्यादा हों कि बहुत कम लोगों के लिए संभव हो सके। अभी क्या है– बुरी चीज बेशर्त उपलब्ध है– अधिकतम लोगों के लिए। अच्छी चीज सशर्त उपलब्ध है— बहुत कम लोगों के लिए। इसलिए स्वभावतः है कि दुनिया अच्छी न हो पाए और बुरी हो जाय। अगर किसी को बुरा होना है तो कोई शर्त ही नहीं है। और अच्छा होना है तो हजार शर्तें हैं। यह तो बहुत महंगे हिसाब हैं। इस हिसाब को तोड़ना पड़ेगा। हमें अच्छे होने के लिए भी कम से कम शर्तें कर देनी पड़ेंगी। न्यून, जितनी न्यून हो सकें। मिनिमम पर उसको ठहरना होगा। इसलिए मैंने तीन बातें कीं। इसमें सबके लिए उपाय हो जाता है। जो घर में भी कपड़ा बदलने में डरता है वह भी एक महीने, दो महीने के लिए, साल में, दो साल में जब सुविधा होगा कर लेगा। शायद एक-दो दफा महीने भर रहने के बाद उसकी हिम्मत बढ़ जाय और वह घर में आकर कपड़ा बदल ले। जो आजीवन जाना चाहता है उसके लिए वह इन्तजाम कर देना है। जो आजीवन

गया है वह भी मेरे लिए पीरियाडिकल है, वह अपनी तरफ से भले गया हो। कल वह कहता है मैं वापस लौटना चाहता हूं तो उसकी कोई रोक न होगी, न उसकी निन्दा होगी। अब तक क्या हुआ है? संन्यास की जो व्यवस्था है हमारी उसमें एन्ट्रेंस है, एक्जिट है ही नहीं। उसमें आदमी प्रविष्ट हो जाय तो वापस नहीं लौटे। वापस लौटे तो हम उसकी निन्दा करेंगे। सारा समाज उसका दुश्मन हो जाएगा और हर आदमी कहेगा कि अपराध हो गया। इतना खतरनाक है कि एक आदमी को सोचने का मौका ही नहीं बचता इस पर। और संन्यासी हुए बिना कैसे जाना जा सकता है कि मुझे भीतर रहना है कि नहीं रहना है? बाहर से निर्णय करना पड़ता है मकान के कि आप भीतर आयें तो पक्की कसम खाकर आयें कि बाहर नहीं निकल सकेंगे। और भीतर जा कर हो सकता है कोई कठिनाई हो। हो सकता है तुम्हें न ठीक पड़े। तो हम जितने स्वागत से संन्यास लेंगे उतने स्वागत से बिदा भी करेंगे। और यह अपेक्षा रखेंगे कि तुम फिर वापस लौट सकोगे। पर यह लौटना भीतरी होगा, तुम्हें लगें तो; ताकि सभी संन्यास की दिशा में अपनी सामर्थ्य के अनुसार जा सकेंगे ऐसा ख्याल है। और मेरा मानना है कि सर्वाधिक श्रेष्ठ और सर्वाधिक महत्वपूर्ण घर में रहकर संन्यास लेना सिद्ध होगा। साधना वहां अद्भुत परिणाम लायेगी और जल्दी परिणाम लायेगी। चूंकि तुम घर की जिन्दगी में कोई फर्क नहीं लाते हो, इसलिए घर के लोग दो-चार दिन में राजी हो जाएंगे। ज्यादा देर नहीं लगेगी। क्योंकि उनकी जिन्दगी में तुम कोई फर्क लाते नहीं।

संन्यासी के प्रति परिवार का, मां का, पिता का, पत्नी का, पति का सबका भय सदा से रहा है। इसलिए पूरी सोसायटी, बड़े मजे की बात है, संन्यासी को आदर देती है। लेकिन संन्यासी के खिलाफ लड़ती रहती है। बेटा चोर हो जाय तो बाप को समझ में आ जाता है, बर्दाश्त कर लेता है। संन्यासी हो जाय तो बहुत मुश्किल हो जाती है। उसका कुल कारण इतना है कि कोई चोर भी हो जाय तो भी घर छोड़ के नहीं भाग सकता। संन्यासी घर छोड़ के भाग सकता है। वह ज्यादा दुखद सिद्ध होता है। पत्नी है, उसके लिए भय हो जाता है कि पति घर छोड़कर भाग जाएगा। बच्चे हैं छोटे, वे भी भयभीत हो जाते हैं। और तुम्हें भी तो गिल्ट अनुभव होती है कि उनको तुम छोड़ के जा रहे हो। और इसलिए मैं मानता हूं कि पुराने दिनों में संन्यासियों का जो बड़ा वर्ग था उनमें ७५ प्रतिशत लोग थोड़े बायलेंट लोग थे। नहीं तो इतनी असानी से नहीं जा सकते थे। हिंसक वृत्ति थी। उन्होंने किसी तरह का मजा लिया पत्नी को कष्ट देने में,

बच्चों को कष्ट देने में । रस है उसमें थोड़ा ।७५ प्रतिशत संन्यासी बहुत गहरे में किसी तरह का रिवेंज ले रहे हैं । वे जिनको दुख देकर जा रहे हैं उनसे रिवेंज ले रहे हैं ।

यह तो आज मनोविज्ञान भी कहता है कि जो लोग आत्महत्या करते हैं वे भी अपने को मारने के लिए कम करते हैं, जो जिन्दा रह जायेंगे उनको दुख देने के लिए ज्यादा करते हैं । जैसे कि एक पत्नी धमकी दे रही है कि मैं आत्महत्या कर लूंगी । वह यह नहीं कह रही है कि मेरी जिन्दगी बेकार हो गयी है । वह कह रही है कि तुम्हें सदा के लिए अपराधी छोड़ जाऊंगी कि मैंने तुम्हारे लिए आत्महत्या की । तुमने ऐसा काम किया कि मुझे आत्महत्या करनी पड़ी । मैं तुम्हारी जिन्दगी भर तुम्हें सताऊंगी । यह भाव तुम्हें जिन्दगी भर सतायेगा कि मैंने आत्महत्या की । मेरी कमी भी सतायेगी, मेरी आत्महत्या भी सतायेगी । तो यह बड़े मजे की बात है, आत्महत्या करने वाले लोग लगते हैं कि सेल्फ पनिशमेंट कर रहे हैं, पर यह भी दूसरे को पनिशमेंट देने की कोशिश है उनकी । इसलिए जब मैं संन्यास की बात करता हूं तो तुम्हें चिन्ता होगी, परेशानी होगी लेकिन एक वर्ष में, दो वर्ष में आहिस्ता आहिस्ता रास्ते पर आ जायेगी बात । इसलिए आ जायेगी कि मेरे संन्यासी पहले से बेहतर आदमी हो जाने वाले हैं । वह अगर पति थे तो बेहतर पति हो जाने वाले हैं, पिता थे तो बेहतर पिता हो जाने वाले हैं, पत्नी थी तो बेहतर पत्नी हो जाने वाली है । और मैं मानता हूं कि एक व्यक्ति घर में संन्यासी होगा तो वह न्यूक्लेस बन जायेगा । धीरे धीरे वह पूरा परिवार संन्यास के इर्दगिर्द आ जायेगा । फिर कोई बाधा नहीं मानता हूं । तुम्हारी जिन्दगी को छूता नहीं कहीं से । वह तुम्हारे ऊपर छोड़ देता हूं– तुम्हारा विवेक जो कहे, सोचें । इस पर किसी का भी मन होता हो– सोचे ।

प्रश्न : वस्त्रों का रंग गेरुवा ही क्यों चुना जाय ?

उत्तर : गेरुवा चुनने के बहुत कारण हैं । एक तो कारण यह है कि वह संन्यासी का पुराना रंग है । सफेद चुना जा सकता है लेकिन सफेद चुन कर तुम पर कोई चोट नहीं पड़ेगी । सफेद सहज ही पहना जा सकता है । सफेद चुनने में कोई चोट नहीं पड़ेगी । सफेद सहज ही पहना जा सकता है, कोई अड़चन नहीं आयेगी । गेरुवा जानकर चुना है; क्योंकि मैं चाहता हूं कि तुम्हारे लिए रिमैंबरिंग बनी रहे । तुम जहां से निकलो, सारी सड़क उत्सुक हो जाय और तुम्हें भी पता चले कि लोग देख रहे हैं, और तुम भी अपने को देख सको । मैं तुमको बेहोशी में नहीं छोड़ना चाहता । तुम्हारे लिए होश का तीर चुभ जायेगा ।

प्रश्न : सफेद कलर में रहे तो वह भी अलग तो रहेगा ?

उत्तर : वह ज्यादा अलग नहीं होगा। सफेद लुंगी सहज ही पूरा दक्षिण पहनता है। ऐसे ऊपर चादर भी डाल लेते हैं। उससे अंतर पड़ने वाला नहीं है और उससे क्या फर्क पड़ता है। मैं सफेद चुनता तो यह पूछ सकते थे कि सफेद क्यों चुना ? इससे क्या फर्क पड़ता ? कुछ तो चुनना पड़ेगा मुझे। तो आप यह पूछ नहीं सकते कि सफेद क्यों चुना ? सफेद उतना आंख को दिखायी भी नहीं पड़ता। एक सड़क से तुम सफेद कपड़े पहनकर निकलो तो, और एक सड़क से तुम गेरुवा कपड़े पहनकर निकलो तो, गेरुवा कपड़े में ९० मौके दिखायी पड़ने के हैं, सफेद कपड़े में दस मौके। अभी अमरीका में लोग इसपर बहुत रिसर्च कर रहे हैं। अभी एक बड़े सुपर स्टोर्स ने रिसर्च की है रंगों की बाबत। उसने पाया कि जो डिब्बे लाल रंग में होते हैं उनकी बिक्री पांच गुनी ज्यादा होती है। तो जो स्त्री उस स्टोर में खरीदने जाती है, तो वहां पूरा अरेंजमेंट कर रखा है। उन स्त्रियों का पूरा नोट लिया जाता है कि सबसे पहले वे किस डिब्बे के प्रति आकर्षित होती हैं। वही चीज कल सफेद डिब्बे में रखी थी स्टोर में, नजर लोगों की नहीं पड़ी। वही चीज आज लाल रंग में रखी है, नजर लोगों की पड़ी। यही चीज कल पीले रंग में रखी है, तो नजर कम होगी। पीले रंग पर २० प्रतिशत लोगों की नजर पड़ेगी और लाल रंग पर ८० प्रतिशत लोगों की नजर पड़ेगी, इतना फर्क है। यह जो बात कर रहा हूं तो चाहता यह हूं कि तुम्हें मैं थोड़ी दिक्कत में डालूं। तुम्हें दिक्कत में पड़ना जरूरी है। वह दिक्कत ही तुम्हारे लिए याद बनेगी। इसलिए ज्यादा से ज्यादा दिक्कत में डालने का ख्याल है। इसलिए एक माला भी डाल दी गले में, ताकि तुम्हारे लिए शक ही न रह जाय किसी को। नहीं तो शौक में भी इस वक्त गेरुवा पहना जाने लगा है। इसलिए एक माला जोड़नी पड़ेगी। नहीं तो इस वक्त बंबई में लड़कियां शौक में भी गेरुवा पहने हुए हैं। माला और गेरुवा संन्यासी को दोनों ख्याल देने वाला हो जायगा।

प्रश्न : सब लोगों ने और सारे देश ने यदि संन्यास व्रत ले लिया तो कल यदि देश पर किसी ने आक्रमण कर दिया तो क्या होगा ?

उत्तर : संन्यासी लड़े, संन्यासी से ज्यादा दुनिया में कोई भी नहीं लड़ सकता। क्योंकि संन्यासी का मतलब यह है कि जो जानता है कि आदमी अमर है। उसको तो लड़ने का कोई भय ही नहीं। संन्यासी जैसा लड़ सकता है वैसा दुनिया में कोई कभी लड़ ही नहीं सकता। अहिंसावादी का इतना ही मतलब होता है कि

अपनी तरफ से किसी को मारने नहीं जाता; लेकिन अहिंसावादी का मतलब यह नहीं होता है कि अपने को पिटवाने के लिए निमंत्रण देता है। वह भी हिंसा है। अगर कोई मुझे जूता मारता है और मैं बैठे हुए सहता हूं तो यह भी हिंसा सही जा रही है। यह अहिंसा नहीं है। संन्यासी किसी को मारने नहीं जाता है। संन्यासी को अगर मारोगे तो उससे ज्यादा करारा जवाब इस दुनिया में कोई नहीं दे सकता। मैं तो संन्यासी को सैनिक मानता हूं। ●

आचार्यश्री रजनीश की सृजनात्मक जीवन दृष्टि

का

मासिक पत्र

युक्रांद

मानसेवी सम्पादक:

अरविन्द कुमार

एक प्रति: १ रुपया * वार्षिक शुल्क: १२ रुपये

देश के कोने कोने में विक्रय एजेन्ट नियुक्त करना है

सम्पर्क करने तथा शुल्क भेजने का पता:

अरविन्द कुमार, सदस्य युक्रांद प्रकाशन समिति,

कमला नेहरू नगर, जबलपुर (म. प्र.) फोन: २९५७

नये आयाम संन्यास के

'संन्यास-जीवन' के इतिहास में नये युग का प्रारम्भ

प्रस्तोता : **स्वामी योग चिन्मय,**
(आचार्य रजनीश के सचिव)

हिमाचल प्रदेश की गोद में बसी सौन्दर्य-स्थली मनाली में २५ सितम्बर ७० से ५ अक्टूबर, १९७० तक युग-द्रष्टा आचार्यश्री रजनीश के सान्निध्य में एक साधना-शिविर सम्पन्न हुआ। इस शिविर में श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व, साधना और संदेश पर सविस्तार चर्चा हुई। ध्यान-साधना के गहरे प्रयोग भी आयोजित हुए।

इस शिविर में आचार्यश्री के जीवन का एक नया आयाम सामने आया। उन्होंने वहां कहा कि संन्यास जीवन की सर्वोच्च समृद्धि है। उसे पूर्णता में सुरक्षित रखा जाना चाहिये। लेकिन आज संन्यास दुःखवाद, निराशावाद, जीवन-विरोधक व दरिद्रता के आवरणों में ग्रस्त हो गया है।

आचार्यश्री को प्रेरणा हुई कि वे संन्यास-जीवन को एक नया मोड़ देने में सहयोगी हो सकेंगे और **नाचते हुए, गीत गाते हुए, आनंद-मग्न, सभी समस्त जीवन को आलिंगन करने वाले, सशक्त व स्वावलंबी संन्यासियों के जन्म में वे साक्षी बन सकेंगे।**

अतः मनाली शिविर में १६ व्यक्तियों ने **सीधे परमात्मा से सावधिक (पीरियाडिकल) संन्यास की दीक्षा ली। आचार्यश्री इस घटना के साक्षी व गवाह बने। इस घटना से 'संन्यास जीवन' के इतिहास में एक नये युग का प्रारंभ हुआ।** पूरे मुल्क में व विश्व के कोने-कोने में 'संन्यास' जन-सुलभ हो सके तथा संन्यास की विद्या, कला और विज्ञान का उपयोग प्रत्येक व्यक्ति कर सके इस लक्ष्य को लेकर **उनके धर्म-चक्र-प्रवर्तन का एक नया आयाम प्रारंभ हुआ है।**

संस्कार-तीर्थ, पोस्ट-आजोल, तालुका-बीजापुर, जिला-महेसाणा (गुजरात) में स्वामी कृष्ण चैतन्य तथा मां आनंद मधु की प्रेम-छाया में देश व विदेश के नव-दीक्षित संन्यासियों की साधना व जीवन-शिक्षण के लिए एक केंद्र निर्मित

हुआ है। ५–६ संन्यासियों का एक छोटा सा 'कम्यून' वहां सृजन तथा धर्म-चक्र-प्रवर्तन की दिशा में संलग्न हो चुका है। यह धर्म-तरु दिन-प्रतिदिन विकसित होकर अनेक शाखाओंयुक्त एक विराट वृक्ष बन सकेगा जिसकी शीतल छाया में लाखों प्यासी आत्माओं को शांति व अमृत उपलब्ध होगा।

यह संदेश घर-घर, व्यक्ति-व्यक्ति तक पहुंच सके, **ताकि जीवन की परिधि में कर्म-सामर्थ्य की सक्रियता तथा व्यक्तित्व के अंतस् केंद्र में संन्यास की मुक्ति, संन्यास की शांति, संन्यास के आनंद व संन्यास की सुगंध का जन्म हो सके।**

मनाली-शिविर में तथा उसके बाद जो २० व्यक्ति इस नये जीवन-आयाम में सम्मिलित हुए हैं उनकी जानकारी नीचे अंकित है।

क्रम	संन्यास के नये सम्बोधन	पुराने नाम	निवास-स्थान
१.	स्वामी आनंद कृष्ण	–श्री रणजीत बी. पारिख	कल्याण, बम्बई.
२.	स्वामी आनंद मूर्ति	–श्री कृष्ण बी. रिंगवाला	अहमदाबाद (गुजरात).
३.	स्वामी आनंद प्रज्ञान	–स्वामी प्रज्ञानानंद	बम्बई.
४.	स्वामी कृष्ण चैतन्य	–श्री बाबूभाई शाह	संस्कार-तीर्थ, आजोल.
५.	स्वामी कृष्ण तीर्थ	–श्री हसमुख रावल	भृगुपुर, सुरेंद्रनगर.
६.	स्वामी चैतन्य भारती	–श्री हरीशचंद्र	नई दिल्ली.
७.	स्वामी प्रेम मूर्ति	–श्री कनुभाई शाह	कल्याण, बम्बई.
८.	स्वामी योग चिन्मय	–स्वामी क्रियानंद सरस्वती	बम्बई.
९.	मां योग लक्ष्मी	–कुमारी लक्ष्मी कुरुवा	बम्बई.
१०.	मां योग भगवती	–कुमारी भगवती एडवानी	गोरेगांव, बम्बई.
११.	मां योग प्रेम	–कुमारी जसु कोठारी	राजकोट, गुजरात.
१२.	मां योग समाधि	–कुमारी मीना मोदी	राजकोट, गुजरात.
१३.	माँ योग यशा	–कुमारी मंगला दुग्गड	पो. घोडनदी, पूना.
१४.	माँ योग प्रिया	–कुमारी पुष्पा	पो. घोड़नदी, पूना.
१५.	मां कृष्ण करुणा	–कुमारी जवेर शाह	बम्बई.
१६.	मां आनंद मधु	–श्रीमती धर्मिष्ठा बी. शाह	संस्कार-तीर्थ, आजोल.
१७.	मां आनंद प्रेम	–स्वामी योग प्रेमानंद	शिवानंदआश्रम, न्यूयार्क.
१८.	मां धर्म मुदिता	–श्रीमती सुमन के. शाह	कल्याण, बम्बई.
१९.	मां धर्म ज्योति	–कुमारी पुष्पा पन्जाबी	बम्बई.
२०.	मां धर्म कीर्ति	–श्रीमती अनुसूइया बहन	संस्कार-तीर्थ, आजोल.

विशेष सूचना

प्रेमियों एवं श्रद्धालुओं के सहयोग से जीवन जागृति केन्द्र ने हाल ही में बम्बई में सुविधाजनक स्थान पर एक आवास-भवन अधिग्रहण किया है; जिसमें कार्यालय, पुस्तकालय एवं आचार्यश्री के निवास की व्यवस्था रहेगी।

आचार्यश्री रजनीश ८ दिसम्बर १९७० से इस नए आवास में स्थानांतरित हो जाएंगे।

पता : ए–१ वुडलैण्ड अपार्टमेन्ट्स,
पैडर रोड, बम्बई–२६

ज्योति शिखा

(त्रैमासिक)

वार्षिक शुल्क

भारत.....	५ रु.
ईस्ट अफ्रीका.....	१२ रु.
यूरोप.....	२० रु.
अमरीका	२५ रु.

सम्पर्क :

जीवन जागृति केन्द्र

५३, एम्पायर बिल्डिंग, पहला माला.
रूम, नं ५३, डॉ. डी. एन. रोड, बम्बई–१.

SCHEDULE VIII

Name of the Public Trust :

Balance Sheet as at

FUNDS & LIABILITIES

Trust Funds or corpus :-				
Balance as per last Balance Sheet			Rs.	4,260·00
Other earmarked Funds :-				
Depreciation Fund	Rs.	3,187·00		
Other Funds :-				
such as Patron/Vice Patron/Life Membership fee, Public fund, Educational activities fund etc.	,,	72,991·93	,,	76,178·93
Liabilities :-				
For expenses	,,	14,087·95	,,	
For sundry credit balances	,,	5,486·51	,,	19,574·46
Income & Expenditure a/c.				
Balance as per last Balance Sheet	,,	671·06		
Add : Surplus as per Income & Expenditure a/c.		1,328·20	,,	1,999·26
		Total	Rs.	102,012·65

As per our report of even date
Sd/-
(Mayra & Khatri)
Chartered Accountants-
Auditor

Dated at Bombay on 9th Sept. 1970.

TRUSTS ACT, 1950.

(Vide Rule 17(1))

Jivan Jagruti Kendra

31st December 1968 Registered No. E. 4057(BOM)

ASSETS

Stock of Books etc.

As per inventory taken, valued and certified by the trustees		Rs.	39,933·60
Furniture & Fixture and Library books etc.	..	,,	21,918·88
Sundry Debtors	..	,,	13,106·82
Advance for office	..	,,	1,111·00

Cash & Bank Balances :-

(a)	In Current Account with Bank of India Ltd., Kalbadevi	Rs.	1,020·03		
	Central Bank Frere Road,	,,	22,163·08		
(b)	With a Trustee	,,	2,759·24	,,	25,942·35
			Total	Rs.	1,02,012·65

The above Balance Sheet to the best of my/our belief contains a true account of the Funds and Liabilities and of the Property and Assets of the Trust.

Sd/-

TRUSTEES

SCHEDULE IX

Name of the Public Trust :

Income and Expenditure Account

EXPENDITURE

To	Establishment expenses such as Salary, postage, Telegram & Telephone charges, Printing & Stationery, Conveyance, Advertisement etc.			Rs.	7,373·77
,,	Contribution and Fees			,,	227·00
,,	**Amount written off** Difference in books			,,	1·30
,,	**Depreciation**				
	On Library books	Rs.	1,973·00		
	On Furniture & Typewriter	,,	131·00	,,	2,104·00
,,	**Expenditure on objects of the trust** Educational ..			,,	749·65
,,	Surplus carried over to Balance Sheet			,,	1,328·20
				Rs.	11,778·92

Sd/-
(Mayra & Khatri)
Chartered Accountants
Auditors

Dated at Bombay on 9th Sept. 1970

Registered No. E. 4057 (BOM).

TRUSTS ACT, 1950.

(Vide Rule 17(1))

Jivan Jagruti Kendra
for the year ending 31st December 1968

INCOME

By	**Income from other sources**		
	Membership fees	725·00	
	Miscellaneous income	5·95	
	Publication of Jyotisikha and books a/c.	11,047·97	Rs. 11,778·92
		Rs.	11,778·92

Sd/-
Trustees

(Note :- Names of the Trustees; Patrons, Life Members, Ordinary Members etc. will be published in the next issues of Jyoti Shikha).

आचार्यश्री रजनीश का देश-व्यापी कार्यक्रम

दिनांक :	स्थान :	कार्यक्रम :	संयोजक :
२१ दिसंबर से २५ दिसंबर	**बम्बई**	ध्यान	जीवन-जागृति केंद्र, ५३ एम्पायर बिल्डिंग, डॉ. डी. एन्. रोड, **बम्बई-१.** फोन: २६४५३०
३१ दिसंबर से ३ जनवरी ७१	**जालंधर**	प्रवचन	श्री ओम्प्रकाश अग्रवाल, एन्. के. १७५, चरणजीतपुरा, **जालंधर**
२१ जनवरी से २४ जनवरी	**पोरबंदर**	,,	धीरेन्द्र भाई मेहता, युगांडा रोड, **पोरबंदर**
४ फरवरी से ७ फरवरी	**इंदौर**	,,	श्री राजमल जैन, १२ जवाहर रोड, **इंदौर**
१८ फरवरी से २१ फरवरी	**अमरावती**	,,	श्री एस्. एल्. श्रीवास्तव, जीवन-जागृति केंद्र. खापर्डे बगीचा, **अमरावती**
१२ मार्च से १५ मार्च	**लुधियाना**	,,	श्री कपिल मोहन, क्वालिटी आइसक्रीम कं., इंडस्ट्रियल एरिया, ओसवाल रोड, **लुधियाना**

मुद्रक प्रकाशक : श्री. ईश्वरलाल एन्. शाह, जीवन जागृति केन्द्र एम्पायर बिल्डिंग, रूम नं. ५३, डा. डी. एन्. रोड, फोर्ट, बम्बई–१
मुद्रणस्थान : स्टेट्स पीपल प्रेस, बम्बई–१

जीवन जागृति केन्द्र, बंबई द्वारा प्रकाशित आचार्यश्री रजनीश साहित्य

हिन्दी साहित्य	मू. रुपया
प्रेम के फूल	५–००
प्रभु की पगडंडियां	४–००
क्रांतिबीज	३–००
नई दिशा नई बात	०–३०
अमृतकण	०–६०
अहिंसादर्शन	०–५०
सत्य की पहली किरण	६–००
शांति की खोज	२–००
मैं कौन हूँ	२–००
कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१–००
नये मनुष्य के जन्म की दिशा	०–७५
बिखरे फूल	०–३५
अज्ञात की ओर	२–००
नये संकेत	२–००
संभोग से समाधि की ओर	३–५०
क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार ?	०–३०
संस्कृति के निर्माण में सहयोग	०–३०
अंतर्यात्रा	३–५०
अस्वीकृति में उठा हाथ	५–००
सत्यका सागर शून्यकी नाव	३–००
आचार्य रजनीश : समन्वय, विश्लेषण,संसिद्धि	७–५०
युक्रांद (मासिक)	१२–००

प्राप्ति स्थल:

(१) जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा. डी. एन. रोड, बंबई :१

(२) मोतीलाल बनारसी दास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७।

(३) स्वदेशी वस्तु भंडार, जाम-नगर।

(४) आर. अंबानी एंड कं., अपोजिट : जिमखाना, राजकोट।

(५) चंद्रकांत पटैल, आसोपालव, बैंक आफ इंडिया के सामने, रायपुरा, बड़ौदा।

(६) मोतीलाल बनारसी दास, नेपाली खपरा, वाराणसी।

(७) मोतीलाल बनारसीदास, अशोक राजपथ, पटना।

(८) भारतीय संस्कृति भवन, माई हीरांगेट जलंधर शहर।

(९) सस्तु किताब घर, पथ्थर कुवां, रिलीफ रोड, अहमदाबाद।

(१०) बालगोविंद कुबेरदास, गांधी रोड, अहमदाबाद।

(११) सर्वोदय साहित्य भंडार, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर–२

(१२) हीराभाई मेहता, पांचघर, ७०, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता : १

(१३) सुषमा साहित्य मंदिर, जवाहरगंज, जबलपुर।

(१४) युनिव्हर्सल बुक सर्विस, सिटी कालेज के सामने, जबलपुर।

(१५) श्री आर. के. पुंगालिया, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना-२

ज्योति शिखा

(जन्मोत्सव अंक)

१९

दिसम्बर १९७०

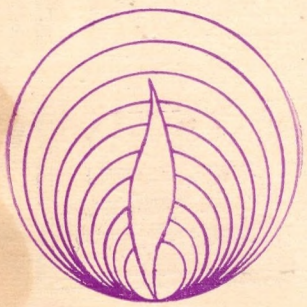

जीवन जागृति केन्द्र